-: सभक्ति समर्पण :-

महा विद्वान् सरस्वती दिवाकर धर्मरत्न स्वर्गीय श्रीमान् पूज्य पंडित लालारामजी शास्त्री की सेवा में

पूज्यवर !

आप मेरे सहोदर पूज्य बडे भ्राता थे, द्वितीय प्रतिमा के धारी एव आगे की प्रतिमाओ के अभ्यासी थे। देव शास्त्र गुरुओ मे आपकी अटूट एव अनुकरणीय श्रद्धा भक्ति थी। विद्वानो में आप एक आदर्श रत्न थे।

कानजी मत के प्रचार से सर्व कल्याणकारी दिगम्बर जैन धर्म मे परिवर्तन एव विकृति आने की सभावना से आप सदैव चिन्ताशील रहे।

आपने चारो अनुयोगो के प्रतिपादक लगभग १००-१२५ सस्कृत शास्त्रो की टीकाएँ रच कर समाज का महान उपकार तो किया ही है, साथ ही सन्मार्ग प्रदर्शक समाज हितकारी अपना अनुभवपूर्ण परामर्श देकर धार्मिक क्षेत्र मे निस्वार्थ सेवा करने के लिये आपने मुझे सदैव आदेश दिये, और प्रेरित किया। इन सब सद्गुणो एव महान उपकारो से अतीव कृतज्ञ होता हुआ मैं नत मस्तक होकर यह लघु पुस्तिका आपकी पुण्य स्मृति मे सभक्ति सादर समर्पण करता हू।

आज्ञा पालक विनम्र- **मक्खनलाल शास्त्री** मोरेना (मध्यप्रदेश)

निःस्वार्थ धार्मिक सेवाओं के उपलक्ष्य में

आभार प्रदर्शन

विद्यावारिधि, वादीभकेशरी, न्यायालंकार, न्यायदिवाकर, धर्मधीर विद्वत्तिलक श्रीमान् प० मक्खनलाल जी शास्त्री की धार्मिक वृत्ति पूर्ण धर्म एवं समाज सेवा से भारत वर्ष का सभी समाज सुपरिचित है।

श्री राजवार्तिक, पंचाध्यायी, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय इन महान् ग्रन्थों की आपने हृदय ग्राही गभीर टीकाऐं रची है, अनेक महत्वपूर्ण ट्रैक्ट लिखे हैं शास्त्रार्थों मे विजय प्राप्त किया है, इससे आपकी प्रतिभाशाली उद्भट विद्वता का सहज परिचय मिल जाता है।

भा. दि. जैन महासभा के साप्ताहिक मुख पत्र जैन गजट और शान्तिवीर सिद्धात संरक्षिणी सभा के मुख पत्र जैन दर्शन का अनेक वर्षों तक निर्भीकता से संपादन कर समाज में जाग्रति और धर्म रक्षाओ मे आपने पूरी शक्ति लगाई है।

भारत प्रसिद्ध सस्था श्री. गो. दि. जैन. सि. महा विद्यालय मोरेना के संचालन की बागडोर आपके ही हाथो में करीब ३०, ३५ वर्षों से है। आपने अनेक विद्वानो को तैयार किया है

सबसे बडी स्तुत्य बात आप में यह है-जब २ धर्म पर आपत्तियाँ आई हैं तब २ आपने प्रभाव पूर्ण लेखो से उन

निरसन किया है। अपनी हर प्रकार की हानि उठाकर भी धर्म विरुद्ध बातों का डटकर विरोध किया है और धर्म की रक्षा करने मे आप सदैव सफल रहे है

समस्याऐं और उनका परिहार

परमपूज्य श्री १०८ आचार्य शान्ति सागर महाराज का अन्न त्याग और हरिजन मदिर प्रवेश समस्या, सजद पद समस्या चर्चा सागर समस्या, बवई सरकार द्वारा हिन्दू धर्म मे जैन धर्म को गर्भित करने की समस्या, इन्दौर राज्य द्वारा मुनि विहार विरोध समस्या, शुद्ध जल ग्रहण समस्या, आदि अनेक समस्याओ के उपस्थित होने पर आपने उन सभी धर्म विरुद्ध विरोधो को दूर करने एव शास्त्र सम्मत सिद्धान्त का प्रदर्शन करने के लिये सप्रमाण सयुक्तिक अनेक गभीर ट्रैक्ट लिखे हैं जैसे-स्श्पृया स्पृश्यभेद बिचार, सिद्धान्त सूत्र समन्वय, सिद्धान्त विरोध परिहार, चर्चा सागर पर शास्त्रीय प्रमाण, जैन धर्म हिन्दू धर्म से सर्वथा भिन्न है, मुनि विहार की सर्वत्र अनिवार्य ता, अतरग वहिरग शुद्धि आदि आपके ट्रैक्टो से समाज पर वहुत प्रभाव पडा है और विवादो के हटने मे पूरी सहायता मिली है।

भा दि जैन महासभा पर जब पूना के कतिपय महाशयों ने झूठा केश चलाया था तब उसके मुखपत्र जैन गजट के सपादक के नाते आपने तथा महासभा के सहायक महामत्री

के नाते श्रद्धेय धर्म रत्न पं० लालाराम जी शास्त्री ने १० माह तक वेल गांव (पूना) में रहकर उस केश में दक्षिण उत्तर के प्रसिद्ध श्रीमानों एवं प्रमुख पुरुषो के सहयोग से महत्व पूर्ण विजय प्राप्त की थी उसके उपलक्ष्य में महासभा ने अधिवेशन में प्रस्ताव पास कर आप दोनों बन्धुओं को उपाधि देने के साथ हार्दिक आभार माना था, वर्तमान कानजी मत की भी एक जटिल समस्या खड़ी हो गई है उसे हटाने के लिये हमारे न्यायदिवाकरजी को बहुत चिंता है, उन्होनें कुछ वर्ष पहले कानजी मत खडन नामका एक विस्तृत ट्रैक्ट लिखा था जो छप कर सर्वत्र वितरण हो चुका है अब फिर कानजी मत के बढ़ते हुये प्रचार को देखकर आपने यह ट्रैक्ट लिखा है। इस ट्रैक्ट द्वारा श्री कानजी भाई को उन्होने मोक्षमार्ग विरोधी सिद्ध किया है और वे दिगम्बर जैन नही ठहरते है इस बात को उन्ही के उद्धरणो द्वारा सप्रमाण भली भांति सिद्ध कर दिया है। इस ट्रैक्ट को ध्यान से पढ़ने वाले स्वय समझ लेवेगे

कानजी मत के अनुयायो और विरोधी दोनो पक्षो के सज्जनो से हमारा यह निवेदन है कि वे कृपा कर इस ट्रैक्ट को आद्योपांत अवश्य पढें तभी वे प्रत्येक विषय की जानकारी प्राप्त कर सकते है।

श्रीमान न्यायालकार जी के समान हमारी भी यही

श्री कानजी भाई के आगम विपरीत मन्तव्यों की

* विषय-सूची *

नोट—श्री कानजी भाई के ऊपर लिखे प्रत्येक मन्तव्य के खण्डन मे साथ ही दिगम्बर जैन आगम भी दिया गया है ।

॥ श्री वर्द्धमानायनम ॥

आद्य वक्तव्य

श्री कानजी भाई महोदय वास्तव से दिगम्बर जैन धर्म धारी नही बने है। किन्तु दिगम्बर जैन नामधारी बनकर दिगम्बर जैन धर्म का रूपान्तर करना चाहते हैं। दिगम्बर जैन समाज के लिये यह एक बहुत भारी समस्या और प्रतारणा है। उसका दिग्दर्शन निम्नप्रकार है।

श्री कानजी भाई पहिले स्थानक वासी साधू थे। किन्तु आज से लगभग बीस-बाईस वर्ष से उस सम्प्रदाय को छोड़ कर वे अपने लिये दिगम्बर जैन घोषित करने लगे है। और अव्रती दिगम्बर जैन के नाम से भी अपने को घोषित करते हैं। उन्होने अन्य समस्त दिगम्बर जैनाचार्यो को छोड़कर केवल आचार्य कुन्द कुन्द स्वामी को अपना गुरु माना है और केवल "समय सार" शास्त्र का स्वाध्याय करके अध्यात्म के नाम पर अणुव्रत और महाव्रतो की अनुपयोगिता

बताते हुये आत्मा मे स्वय शुद्ध रूप का अनुभव बताते हैं। अणुव्रत और महाव्रत को धारण करना उनकी दृष्टि मे निरर्थक दीखने लगा है। इसीलिये महाव्रत धारी नग्न दिगम्बर जैन साधुओ को वे सम्यग्दर्शन रहित केवल द्रव्यलिङ्गी (मिथ्यादृष्टि) बताते हैं। इसी अपनी विचार धारा के अनुसार वे किसी मुनि को नमस्कार भी कभी नही करते। प्रत्युत उनके समक्ष आप स्वय उच्चासन पर बैठते हैं। उन्हे अपने से नीचे बिठाते हैं। यह बात मधुवन (सम्मेदशिखर) मे प्रत्यक्ष देखी गई है सोनगढ मे जितने भी क्षुल्लक आदि त्यागी गये है वे सब अपने से नीचे बिठाये गये हैं। स्वय अव्रती होने पर भी वे अपने को सम्यग्दृष्टि एव परम सद्गुरु के नाम से अपने अनुयायीओ द्वारा पुजवाते हैं। परन्तु शास्त्राधार से दिगम्बर जैनो की यह परिपाटी नही है। उन मे तो अव्रती पुरुष नैष्ठिक श्रावक और महाव्रती साधुओ को पूज्य समझकर उनको उच्चासन देगा तथा उन्हे वन्दना एव नमस्कार करेगा तथा स्वय उनसे नीचे बैठेगा। इस-लिये ये कहना असंगत नही है कि श्री कानजी भाई की उक्त प्रणाली दिगंबर जैन धर्म के सर्वथा विपरीत है।

उन्होने बीस-बाईस जिन मन्दिरो का निर्माण कराया है। उनकी प्रतिष्ठा भी करवाई है। सैकड़ो व्यक्तियो को दिगम्बर जैन के नाम से भी घोषित किया है। जो कि

मुमुक्षु मण्डल के नाम से कहे जाते हैं। परन्तु ये सैंकड़ो जैन बन्धु वे ही हैं जो स्थानक वासी गुजराती जैनी थे दिगम्बर जैन कुलोत्पन्न (परम्परा के दिगंबर जैन) तो थोडे से ही इने गिने किन्ही प्रयोजन वस उनके अनुयायी बन गये है।

अस्तु उनके बनवाये हुये जिन मन्दिरों मे वह परिपाटी और श्रद्धा भाव नही है जैसा कि परंपुरीण दिगंबर जैन मन्दिरो मे है उनके मन्दिरो मे केवल "समय सार" का ही स्वाध्याय होता है। और यह उपदेश होता है कि भगवान पर पदार्थ है उनकी पूजा से शुभ पुण्य होता है जो कि संसार का ही कारण है जो लोग जिनेन्द्र भगवान की पूजा को ससार का कारण मानते है उनके भाव भगवान की भक्ति और श्रद्धा की ओर कभी नही हो सकते इसी प्रकार श्री कानजी भाई तीर्थङ्कर भगवान की दिव्यध्वनि से भी आत्मा का कोई हित नही बताते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि दिव्य-ध्वनि पर पदार्थ है और जड है। इसलिये उससे आत्मा का कोई कल्याण नही हो सकता है। ऐसा उनका मानना दिग-म्बर जैन शास्त्रो के सर्वथा विरुद्ध है क्योकि तीर्थङ्कर की वाणी से ही रत्नत्रय स्वरूप मोक्ष मार्ग चालू होता है। दिगंबर जैन मन्दिर भी समवशरण की ही प्रतिकृति है वे भी मोक्ष मार्ग के साधक है उन्हें ससार का कारण बताना और उन्ही मन्तव्यो का उन्ही मन्दिरो मे प्रचार करना उन

मन्दिरो का पूरा दुरुपयोग है। श्री कानजी भाई के बनवाये हुये मन्दिरो मे यही बात होती है। इसलिये समाज को उन मन्दिरो के प्रलोभन मे नही आना चाहिये।

सच्चे दिगम्बर जैन बनने वालों का आदर्श

आचार्य विद्यानन्दि जी स्वामी कट्टर वैष्णव थे परन्तु जब वे दिगंबर जैन बनगये तब उन्होने पूर्वाचार्यों का पूर्ण रूप से अनुसरण तो किया ही किन्तु अपने सम्यक्त्व और चरित्र द्वारा एक महान् आदर्श उपस्थित कर दिया।

वर्तमान मे परम पू० मुनिराज श्रुतसागर महाराज जो परम पू० आचार्य शिव सागर महाराज के संग मे रहते हैं वे पहिले कलकत्ता मे श्वेताम्बर जैन अच्छे व्यापारी थे। अब दिगंबर जैन बनकर उन्होने जो आदर्श उपस्थित किया है वह स्तुत्य है। इसी प्रकार स्व० पू० पं० गणेशप्रसाद जी वर्णी और स्व० बाबा भागीरथ जी वर्णी तथा स्व० कुंवर दिग्विजय सिंह जी ये तीनो ही वैष्णव मत को छोड़ कर दिगंबर जैन बने। और दिगंबर जैन धर्म मे पूर्ण श्रद्धा रखते हुये क्षुल्लक मुनि और ब्रह्मचारी बनकर स्वपर कल्याण मे साधक भी बने। अभी अहमदाबाद मे प्रसिद्ध नगर सेठ श्री उमाभाई पन्नालालजी रहते हैं वे पहिले श्वेताम्बर जैन थे उनका बनवाया हुआ मन्दिर भी है श्वेताम्बर मत को

छोडकर दिगवर जैन धर्म धारण कर लिया है। वे पूर्वाचार्यो के पक्के श्रद्धानी एव अनुयायी हैं। इस समय वे सप्तम प्रतिमा धारी है और जगह २ पहुँच कर बडी भक्ति और श्रद्धा के साथ मुनियो को अहारदान देते हैं उनकी पूर्ण भक्ति और वैया वृत्ति करते हैं।

परन्तु श्री कानजी भाई ने तो दिगम्बर जैन बनकर दिगम्बर जैनाचार्यो के सिद्धान्त और मोक्ष मार्ग का ही लोप कर दिया है उन्होने जैसा नवीन पंथ और नये २ मन्तव्यों का प्रचार किया हैं वैसा तो किसी ने नहीं किया है। आश्चर्य इस बात का है कि जिन बातो का वे प्रचार करते हैं वे बातें किसी भी दिगम्बर जैन शास्त्र में नही पाई जाती उनका समस्त प्रचार दिगम्बर जैन शास्त्रो से सर्वथा भिन्न और स्वतन्त्र है।

हमे तो वे सरल और दिगबर जैन धर्म के जिज्ञासु भी नही दीखे। यदि वे सरल और धर्म के जिज्ञासु होते तो स्वय वर्तमान विद्वान आचार्यो और मुनिराजो के दर्शनो के लिये उनके पास पहुचते। तत्त्वचर्चा करते, धर्म का सच्चा स्वरूप समझने का प्रयत्न करते शास्त्र मर्मज्ञ विद्वानो से भी विचार करते। परन्तु वे तो सभी को ठुकरा रहे हैं। किसी की कोई बात सुनना भी नही चाहते और आँख मीच कर अपने सीमातीत सुधार वादी नवीन पंथ के प्रचार मे

लगे हुये है वास्तव मे यह प्रचार और विचार स्व-पर कल्याण का घातक है। अधिक खेद की बात यह है कि तीन चार विद्वान उनके अनुयायी बन चुके है। वे उनके मन्तव्यों का समर्थन कर समाज को भ्रम मे डाल रहे हैं। अस्तु जिनका जैसा भाव हो, जो प्रयोजन हो जैसा होनहार हो-सो हो, हम या और कोई क्या करेंगे।

कानजी मत के मन्तव्य दिगम्बर जैन सिद्धान्त के विपरीत हैं

इस अति सक्षिप्त छोटे से ट्रैक्ट मे यही बतलाया गया है कि श्री कानजी भाई के सभी मन्तव्य दिगंबर जैन सिद्धान्त के सर्वथा विरुद्ध है। इस ट्रैक्ट को पढने वाले सभी विचारशील सज्जन जिन्होंने दिगंबर जैन ग्रन्थो का स्वाध्याय, या अध्ययन किया है। वे स्वय समझेंगे कि उनके मन्तव्य कैसे हैं।

उनके मन्तव्यो के उत्तर मे जो हमने शास्त्रीय सिद्धान्तों का विवेचन किया है उनमे प्रमाणों का उद्धरण नही दिया है। प्रमाण देने से ट्रैक्ट बढ जाता। जिन्हें श्री कानजी भाई के मन्तव्यो के विरुद्ध शास्त्र के प्रमाण देखना हो वे हमारे "कानजी मत खण्डन" इस विस्तृत ट्रैक्ट मे देख सकते हैं। वह ट्रैक्ट कई वर्ष पहिले छप चुका है श्री पूज्य

ब्र० चादमल जी चूडीवाल के विस्तृत ट्रैक्ट मे भी उनके मन्तव्यों का सप्रमाण खण्डन है उसे देखे सपादक जैन गजट भी उनके मन्तव्यो का सप्रमाण और सयुक्तिक खण्डन कई वर्षों से लिख रहे है।

श्री कानजी भाई के मन्तव्यो को हमने उनके ही शब्दो मे लिखा है। उनके अभिप्राय के विरुद्ध एक अक्षर भी नही लिखा है। उनके मन्तव्यो की झलक उनके मासिक-पत्र (आत्म धर्म) मे रहती है।

त्यागियों विद्वानों और समाज का अभिमंत

वर्तमान में जितने भी आचार्य हैं, मुनिराज है ऐलक-क्षुल्लक है, विदुषी आर्यिकायें हैं, भट्टारक है, प्रमुख विद्वान है और इने गिने कुछ लोगो को छोडकर समाज वहुभाग हैं वे सभी श्रीकानजीभाई के मंतव्यो को आगम विरुद्ध वतला रहे है फिर भी श्री कानजी भाई और उनके अनुयायी विद्वान् विचार करने के लिये तैयार नही हैं। यह एक बहुत आश्चर्य और खेद की बात हैं।

श्री कानजी भाई और उनके अनुयायी विद्वानों से हमारा कोई विरोध नही है किन्तु केवल सिद्धात विरोध है। इस लिये यह ट्रैक्ट भी हमने उन पर किंचित् भी आक्षेप दृष्टि से नहीं लिखा है। किन्तु दिगम्बर जैन सिद्धांत का लोप

विरोध करता है वह उस मत का मानने वाला नही ठहरता है ऐसी दशा मे वे कौनसी सम्प्रदाय वाले जैन कहे जा सकते है। इसके उत्तर मे यही सहेतुक समाधान उचित प्रतीत होता है कि स्थानक वासी श्वेताम्बर दिगम्बर इन तीनो जैनो से भिन्न स्वतत्राम्बर जैन इस नवीन सम्प्रदाय के जैन वे कहे जाने योग्य है। क्योकि उसी नवीन स्वतंत्र सम्प्रदाय का मत वे स्थापित कर रहे है।

हमारा अंतरंग भाव

दिगबर जैन धर्म सर्वज्ञ भगवान की वाणी से प्रसारित हुआ है गणधर देव श्रुत केवली एव आचार्य परपरा द्वार शास्त्रो मे निवद्ध होकर भगवान महावीर स्वामी के समय से अविच्छिन्न, निर्विवाद एव एक रूप मे चला आरहा था काल दोष से उसमे दो सप्रदाय भेद हो गये। अब यह नवीन स्वतत्र सप्रदाय भेद दिगबर जैन धर्म मे अमर्यादित पूरी शिथिलता उत्पन्न कर एव तत्वो का विपर्यास कर समाज मे एक रूपान्तर कर देगा इसी से चिंतित और खिन्न होकर धर्म रक्षा की दृष्टि एव समाज हित के नाते इतना लिखना पडा है उन सज्जनो का चित्त दुखाने का हमारा किंचिन्मात्र भी भाव नही है। हमतो यह हार्दिक अभिलाषा रखते है कि श्री कानजी भाई और उनके अनुयायी बन्धुओ में सद्बुद्धि पैदा हो और वे दिगबर जैन धर्म को विशेषज्ञों से शास्त्रि

एव सरल जिज्ञासु बुद्धि से समझे तथा दिगवराचार्यों के वचनो को अङ्गीकार करे तो उनका सच्चा हित होगा और उनसे दूसरो का भी सच्चा हित हो सकेगा। तब हमको और समाज को हार्दिक हर्ष होगा। और हम उनका पूर्ण सम्मान एव धार्मिक वात्सल्य प्रगट करेंगे। इसी शुभ भावना से हमने यह ट्रैक्ट लिखा है।

दूसरा हमारा निवेदन यह है कि इस ट्रैक्ट की दोनो पक्ष के महानुभाव ध्यान से आद्योपान्त अवश्य पढने का कष्ट करे ताकि उन्हे वस्तु स्थिति का पूरा परिज्ञान होजाय।

मोरेना — मक्खन लाल शास्त्री

२२-८-६३

* श्री वर्धमानाय नमः *

मोक्ष मार्ग विरोधी श्री कानजी भाई

(किस आधार से श्री कानजी भाई दि० जैन समझे जांय)

वीरं नमामि सर्वज्ञं वीतरागं जगद्धितम्
वर्धमानं तीर्थेशं त्रिलोक परमेश्वरम् ।
द्वादशांगं श्रुतं तं प्रणमामि च श्रद्धया
स्याद्वाद मुद्रया येन सर्वतत्त्व प्रकाशितम् ।
सर्वं साधून् स्तुत्य मूलोत्तर गुणान्वितान्
मुक्तिकामः धर्मरक्षार्थं सम्यक्त्वं लिखाम्यहम् ।

इस पुस्तक में पहिले काले टाइप में श्री कानजी भाई का मत प्रगट किया गया है। इसके नीचे सफेद टाइप में दिगम्बर जैन आगम बताया गया है।

श्री कानजी भाई का आगम विपरीत मत—आत्मा में कर्मों का अभाव है वे लिखते हैं—

"शुभ अशुभ भाव जड़ कर्मों से नहीं होते हैं किन्तु तू अपने उल्टे भावों से उन्हें उत्पन्न करता है।"

(आत्म धर्म पृष्ठ ३६ वर्ष १ अंक ३)

"जो शुभ अशुभ भाव होता है वह कोई कर्म या शरीर नहीं करवाता किन्तु वह केवल अपने पुरुषार्थ की कम जोरी से होता है।"

(आ. ध. पृष्ठ ३८ वर्ष २ अंक ३)

"कर्म की तो आत्मा मे त्रिकाल नास्ती है; परन्तु आत्मा की क्षणिक विकारी मान्यता है कि पर से मुझे लाभ होते हैं, और कर्म मुझे भव भ्रमण कराते है। यह मान्यता ही जन्म मरण का कारण है। इस उल्टी मान्यता से ही आत्मा रुलता फिरता है।"

(आ. ध. पृष्ठ ८७ अंक ६ वर्ष १)

"आत्मा त्रिकाल शुद्ध निर्दोष वीतराग स्वरूप है यों न मानकर उसे शरीरादि अथवा रागद्वेष युक्त मानना यही वास्तविक पराधीनता है।"

(आ. ध. पृष्ठ १०१ अंक ७)

"विपरीत भाव ही संसार है, कर्म संसार में चक्कर नहीं खिलाते, आत्मा के सुख दु:ख का कारण आत्मा के उस समय के भाव है। कर्म अथवा कर्म का फल सुख दु:ख का कारण नहीं है।"

(आ. ध. पृष्ठ १३९ अंक ९ वर्ष १)

दि० जैन आगम:-

श्री कानजी भाई कर्मो का सबध आत्मा मे नही मानते है ऐसा मानकर वे समयसार और भगवत् कुन्द कुन्द स्वामी को अप्रमाण स्वय ठहरा रहे हैं क्योकि समयसार मे

जीव और कर्मो का निमित नैमित्तिक सम्बन्ध अनेक गाथाओ मे स्पष्ट लिखा गया है उसके विरुद्ध अपने स्वतन्त्र विचारो द्वारा वे समस्त आचार्यो और समयसार आदि सभी शास्त्रो को असत्य ठहराते है । समस्त शास्त्रो मे जीव, अजीव आश्रव, बध सवर, निर्जरा, मोक्ष तथा पुण्य पाप ये सात तत्व नौ पदार्थ वर्णन किये गये है ये पदार्थ बिना कर्मो के सम्बन्ध के किसी प्रकार सिद्ध नही हो सकते है ऐसी अवस्था मे सर्व पदार्थ लोपक श्री कानजी भाई का स्वतत्र मतव्य ठीक माना जाय और सप्त तत्व प्रतिपादक शास्त्रो को मिथ्या माना जाय क्या ? इस बात को स्वाध्याय शील पाठक महोदय स्वय समझ लेवे ।

आगम तो यह है कि आत्मा कर्मो के सबध से ही अनादि काल से रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ इन विकारो से विभाव वाला बन गया है और उन्ही कर्मो के निमित्त से नरक, निगोद आदि गतियो मे घूमता फिरता है, यदि कर्मो के विना आत्मा स्वय विकारी वन जाय तो सिद्ध परमेष्ठी भी विकारी बन सकते है ।

इस विषय मे तत्वार्थ सूत्र, सर्वार्थ सिद्धि, राजवार्तिक श्लोक वार्तिक, लब्धिसार, क्षपणासार, गोम्मटसार, धवल, महाधवल, आदि सभी शास्त्र प्रमाण है । कर्मो की निर्जरा करके ही आत्मा मोक्ष पाता है । आत्मा का स्वभाव तो

अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, आदि विशुद्ध गुणात्मक है वह बिना कर्मों के स्वयं विकारी कैसे बन गया? इसलिये अनादि कर्म बंधन सहित (कर्मों के द्वारा ही) आत्मा भव भ्रमण करता है यह आगम प्रमाण से निर्विवाद सिद्ध है। यही दिगम्बर जैन सिद्धांत है।

कानजी भाई का यह कहना है कि आत्मा में कर्मों का कोई संबंध नहीं है उसका हेतु वे बताते हैं कि कर्म जड़ है और पर है आत्मा का जड़ और पर पदार्थ कुछ भी बिगाड़ बनाव नहीं कर सकता है।

इस कथन का प्रत्यक्ष ही विरोध है। देखिये मदिरा जड है और पर है फिर भी मदिरा पीने वाले का ज्ञान नष्ट हो जाता है विवेक सब चला जाता है। उसका आत्मा मूर्छित हो जाता है। साक्षात् ज्ञान पर मदिरा जड़ का असर प्रत्यक्ष देखा जाता है। इसी प्रकार जिस व्यक्ति को दर्शन गुण प्रगट है उसके बाहरी नेत्र फूट जावें वह अन्धा हो जाय तो फिर दर्शन गुण रहने पर भी क्यों नहीं वह देख सकता है बाहरी चक्षु तो जड है उनका असर आत्मा पर कैसे पड गया है।

(कर्मों का सम्बन्ध आत्मा से नहीं मानने पर गुण स्थान और मार्गणाएं कैसे सिद्ध होंगी। क्योंकि कर्मों का सम्बन्ध और प्रभाव (असर) होने से ही गुण स्थानों और मार्गणाओं का स्वरूप बनता है। अन्यथा नहीं बनेगा तो

क्या गुण स्थान मार्गणाऐं सब सिद्धात जो अर्हंत सर्वज्ञ ने वताऐ है तथा घातिया अघातिया कर्मो के भेद बताये है वे नब क्या झूठे है ? आश्चर्य की बात है कि दिगम्बर जैनाचार्यो और समस्त शास्त्रो का श्री कानजी भाई लोप कर रहे है और उनके मन्तव्य का कोई आधार भूत शास्त्र भी नही है ऐसे अनर्गल निर्मूल मन्तव्यो का वे प्रचार कर रहे है ऐसी अवस्था मे उन्हे दिगम्बर जैन कैसे समझा जाय ? कर्म सिद्धात और जीव सिद्धात का वर्णन बहुत है कर्मो का बध, वध के कारण, वध के भेद, उदय, अपकर्षण, उत्कर्षण, उदयाभावोक्षय, सर्वधाति, देशघाती, सत्व, कर्मो की एक देश निर्जरा, सर्व देश निर्जरा, ससार, मोक्ष, ये सब आत्मामे कर्मो के सम्बन्ध से ही होते है।

मधुवन (शिखर जी) मे पूज्य क्षुल्लक प० गणेश प्रसाद जी वर्णी ने कई विद्वानो के साथ श्री कानजी भाई से प्रश्न किया था कि आप यह वताओ कि राग द्वेष और ससार भ्रमण कर्मो के बिना स्वय आत्मा मे होता है तो सिद्धो मे क्यो नही हो जाता ? या कोई अन्य कारण हो तो वताओ ? कानजी भाई ने उत्तर मे यही कहा कि अभी मे कुछ नही कह सक्ता हू फिर विचार कर कहूँगा। दुबारा भी पूछा गया तब भी वे निरुत्तर रहे अब पाठक स्वय समझ लेवे कि कानजी भाई दि० जैन आगम का सर्वथा लोप

कर रहे हैं। यदि आत्मा स्वयं अपनी योग्यता से रागद्वेष और संसार मे भ्रमण करता है तो क्या उसका शास्त्र प्रमाण हैं। और वह योग्यता क्या है ?

श्री कानजी भाई का दूसरा आगम विपरीत मत शारीरिक क्रिया से धर्म अधर्म कुछ नहीं होता है

वे मानते हैं कि "जो शरीर की क्रिया से धर्म मानता है सो तो बिल्कुल बाह्य दृष्टि मिथ्या दृष्टि है किन्तु यहां तो जो पूण्य से धर्म मानता है सो भी मिथ्या दृष्टि है"

"जितनी पर जीव की दया, दान, व्रत, पूजा, भक्ति इत्यादिक की शुभ लगन या हिंसादिक की अशुभ लगन उठती है वह सब अधर्म भाव है।"

(आ. ध. पृष्ठ १० अंक १ वर्ष ४)

"बाह्यतप, परीषह इत्यादि क्रियाओं से मानता है कि मैंने सहन किया है इसलिये मेरे धर्म होगा किन्तु उसकी दृष्टि बाह्य में है इसलिये धर्म नहीं हो सकता।"

(समयसार प्रवचन भाग पहिला पृष्ठ ३००)

"धर्म के नाम पर जगत मे अनेक प्रकार की गड़-बड़ चल रही है प्रायः लोग बाह्य क्रिया मे धर्म मान रहेहैं किन्तु बाह्य क्रिया से आत्मा को तीन काल तीन लोग में धर्म का अंश भी प्राप्त नहीं होता, पुण्य भाव तो मवाद है

विकार है उससे तो संसार ही फलित होता है।"

(समयसार प्रवचन भाग २ पृष्ठ ४१४)

"अज्ञानी यह मानता है कि उपवासादिक करके शरीर इतना सूख गया है और इतने हैरान हुवे है, इसलिये अतरंग में अवश्य ही गुणलाभ हुआ होगा किन्तु वीताराग देव कहते है कि यह बात मिथ्या है, पर से आत्मा को कुछ भी लाभ नही होता।"

(समयसार प्रवचन भाग २ पृष्ठ १६१)

"श्रावक के वाहर व्रत और मुन्यिो के पंच महाव्रत भी विकार है।"

(समयसार प्रवचन भाग ३ पृष्ठ १२)

"धर्म के नाम पर व्रतादिक क्रियाऐं की, शरीर में कांटे लगाकर उसे जला दिया जाय तो भी क्रोध न करें ऐसी क्षमा रखने पर भी धर्म नही हुआ मात्र शुभ भाव हुआ।"

(सयमसार प्रवचन भाग १ पृष्ठ १०३)

"हे भाई देह की क्रिया से धर्म तो क्या किन्तु पुण् पाप भी नही होता।"

(समयसार प्रवचन भाग १ पृष्ठ ४५४)

"कोई यह मानते हैं कि दान पूजा तथा यात्र आदि से धर्म होता है और शरीर की क्रिया से धर्म होत

है यह मान्यता मिथ्या है।"

(आ० धर्म अंक ५ वर्ष ३)

दिगम्बर जैन आगम

आत्मा शरीर की क्रिया और उसकी सहायता से ही ससार मे रुलता फिरता है और शरीर की क्रिया तथा उसकी सहायता से ही मोक्ष प्राप्त कर लेता है, यदि जीवित शरीर की क्रिया को केवल जड की क्रिया मानकर उससे आत्मा का कोई सम्बन्ध नही माना जाय, अथवा आत्मा पर उसका प्रभाव (असर) नहीं माना जाय तो पाच पापो को करने वाला नरकादि गतियो मे जाता है तथा अणुव्रत महाव्रत धारण करने वाला स्वर्ग तथा मोक्ष को पा सकता है। ये सब बातें शरीर के सम्बन्ध से ही होती है यह बात मिथ्या ठहरेगी। जो शास्त्रो से भली भाति सिद्ध है। प्राण धारी जीव के शरीर की क्रिया जीव की इच्छा से ही होती है। यदि ऐसा नही माना जाय तो परदेश जाने वाला व्यक्ति और वहा से लौट कर घर आने वाला व्यक्ति यथा स्थान पर कैसे पहुच जाता है? क्या जड शरीर मे ऐसी इच्छित क्रियाऐ हो सकती है? पूजा स्वाध्याय, ध्यान, तीर्थ बंदना, मुनिदान, आदि क्रियाऐ क्या जड़ शरीर की क्रियाऐं हो सकती है? कभी नही! किन्तु उनसे शुभ, पुण्य, आत्म

विशुद्धि एव कर्मो को निर्जरा भी होती है। इसलिये इन धार्मिक क्रियाओ को जड शरीर की क्रिया बताकर इनसे आत्मा का कोई सबध नही मानना दिगम्बर जैन सिद्धान्त के सर्वथा विपरीत है। वज्र वृषभ नाराज संहनन वाले शरीर से ही उत्तम तपश्चरण होता है उसी से कर्मो की निर्जरा और मोक्ष प्राप्ति होती है इस विषय मे मूलाचार, समय सार, प्रवचन सार, गोम्मटसार, भगवती आराधना, चरित्रसार आदि सभी अध्यात्म शास्त्र प्रमाण है। ये ही दिगम्बर जैन धर्म है। स्पर्शन, चक्षु, जिव्हा, कान, नाक, इन पाँचो इन्द्रियो द्वारा जो वस्तु का ज्ञान होता है वह क्या मृत शरीर से हो सकता है ? मृत शरीर तो आग मे जलने पर भी दु ख का अनुभव नही कर सकता है। जो बधक शिकारी पशु पक्षी को मारता है और जो अणुव्रत, महाव्रत, धारण कर जीवो की रक्षा करता है ये दोनो बातें यदि शरीर की क्रिया होने से अधर्म और धर्म नही मानी जावे तो ससारी जीवो के लिये नरक स्वर्ग मोक्ष आदि के लिये कौनसी क्रियाऐ एव कौन से भाव कारण हो सकते हैं सो कानजी भाई बतावें ?

उनके कथन का अभिप्राय यह स्पष्ट है कि श्रावक और मुनिगण देवदर्शन, मुनिदान, तीर्थ यात्रा, मुनिपद धारण तपश्चरण छोड देवें। समस्त दिगम्बर जैम इस शास्त्रो के बिपरीत ऐसे स्वतत्र बिवेचन से धर्म अधर्म की

कोई व्यवस्था नही होगी सवका लोप ही समझना चाहिये फिर अपने कथन के विरुद्ध श्री कानजी भाई स्वयं क्यों देव पूजा और तीर्थ यात्रा करते है यह दिखावट क्यो ? और स्ववचन बाधित बात क्यो ?

भावात्मक धर्म तो अप्रमत्त सातवें गुणस्थान से हो सकता है। इसके नीचे चौथे से छठे गुणस्थान तक क्रियात्मक भी धर्म हो सकता है या नहीं ? यदि क्रियात्मक धर्म कोई नहीं है तब आचार्य कुंद कुंद स्वामी प्रभृति आचार्यों ने अणुव्रत महाव्रत समिति आदि को धर्म बताया है सो क्या मिथ्या है ? भरत महाराज और तीर्थकर तक ने घर छोडकर और जंगल में जाकर वस्त्र भूषण छोडना केश लुंचन करना एव महाव्रत धारण करना आदि क्रियाऐं जो कि शरीर से संबध रखती है और मोक्ष प्राप्ति में पूर्ण सहायक है कानजी भाई के मतानुसार सभी व्यर्थ ही ठहरेंगी ? क्या इसीप्रकार के नये पथ के लिये उन्होने दिगम्बर जैन अपने लिये घोषित किया है ?

श्री कानजी भाई का तीसरा आगम विपरीत मत

जीव के मारने मे कोई पाप नही हैं, जीव दया में धर्म समझना मिथ्यात्व है

"लोग जड़ शरीर और चैतन्य आत्मा को पृथक कर देने को हिंसा कहते हैं, किन्तु हिंसा की यह व्याख्या सत्य नहीं

है क्योंकि शरीर और आत्मा तो सदा से प्रथक थे ही उन्हें प्रथक करने की वात केवल औपचारिक है, आत्मा अपने शुद्ध ज्ञायक शरीर से अभेद है वह पुण्य पाप की वृत्ति से रहित चैतन्य ज्ञान मूर्ति है, इस स्वरुप को न मानकर पुण्य पाप को अपना मान लिया।"

(आत्म धर्म पृष्ठ ४८ अंक ४ वर्ष १)

"अज्ञानी यह मानता है कि वहुत से जीव मरे जारहे हो तव उस समय उन्हे वचाना अपना कर्त्तव्य है और उन्हें वचाने का शुभ भाव चैतन्य का कर्त्तव्य है इस प्रकार मिथ्या दृष्टि जीव अपने को पर पदार्थ का और विकार का कर्त्ता मानता है।"

(आ. ध. पृष्ठ ३३ अंक ३ वर्ष ४)

"लौकिक मान्यता ऐसी है कि पर जीव की हिंसा नहीं करनी ऐसा उपदेश भगवान ने दिया है परन्तु यह मान्यता भूल भरी है। कोई जीव किसी जीव की हिंसा नहीं कर सकता है।"

(आ. ध पृष्ठ १६ अंक ८ वर्ष ४)

"जीव और शरीर भिन्न भिन्न ही हैं, और जड़ को मारने से हिंसा नही होती है।"

(आ. ध. पृष्ठ १६ अंक २ वर्ष ४)

"यदि पर जीव दया पालन के शुभ राग मे धर्म हो तो सिद्ध दशा में भी परजीव की दया का राग होना चाहिये,

परन्तु शुभ राग धर्म नहीं हैं किन्तु अधर्म है हिंसा है। मैं पर जीव की रक्षा करूं ऐसी दया की भावना भी परमार्थ से जीव हिंसा ही है।"

(आ. ध. पृष्ठ १२ अंक १ वर्ष ४)

दिगम्बर जैन आगम

जीव दया को मिथ्यात्व बताना, और जीव के मारने मे कोई पाप नही बताना ये कितना विपरीत कथन है, जब कि दिगम्बर जैन धर्म मे सम्यग्दृष्टि से लेकर अणुव्रती श्रावक और महाव्रती मुनियो के छट्ठे गुणस्थान तक आचरण मे जीव दया ही मुख्य है। जहा जीव दया नही है वहां आत्मा शुद्ध कभी नही हो सकती है मुनिराज पीछी का उपयोग, समितियो का पालन एव व्रतो का पालन, जीव दया एवं आत्म विशुद्धि के लिये ही करते है। श्रावक और मुनियो के अतीचारो का त्याग जीव दया से ही सम्बन्ध रखता है उस विषय मे पुराण शास्त्र, अध्यात्म शास्त्र मूलाचार चारित्रसार, और न्याय शास्त्र सभी प्रमाण है। इसलिये जीव दया का पालना परमावश्यक है। यही दिगम्बर जैन सिद्धान्त है।

जीव के मारने मे कोई पाप नही है ऐसा कथन तो सुनने के योग्य भी नही है। सबसे बडा पाप हिंसा मे ही शास्त्र कारो ने बताया है। जीव के मारने मे संकल्पो

हिंसा होती है जो अशांतियों का ही कारण है इसलिये कसाई मछली मारने वाले धीवर, पशु पक्षियों के शिकार करने वाले शिकारी आदि मनुष्य महाहिंसक. भयानक क्रूर परिणाम वाले निर्दयी. कहे जाते हैं।

पाक्षिक श्रावक से लेकर नैष्ठिक श्रावक का जितनी भी क्रियायें हैं जिनमें रात्रि भोजन बिना छाने जल आदि का त्याग है, बारह व्रत हैं, आरम्भ परिग्रह का त्याग है आदि सब जीव रक्षा की प्रधानता रखती है यही दिगम्बर जैन सिद्धान्त है।

पाक्षिक श्रावक सबसे जघन्य जैन है उसके लिये भी यह विधान है कि वह भी बिना प्रयोजन एक इन्द्रिय जीव को भी नहीं सतावे उसका विघात नहीं करे। मुनि स्थावर हिंसा और त्रस हिंसा दोनों के त्यागी हैं। इससे जीव रक्षा ही प्रधान धर्म है श्री कानजी भाई का मन्तव्य दि० जैन धर्म का मूलोच्छेद करने वाला है। वे ऐसे स्वतंत्र विचार और प्रचार द्वारा एक स्वतंत्र जैन मत नामक सम्प्रदाय बना रहे हैं।

समस्त आचार्यों ने सभी पापो मे सबसे बड़ा पाप हिंसा को ही बताया है। और सबसे बड़ा धर्म जीव दया को ही बताया है दिगम्बर जैन धर्म अहिंसा प्रधान धर्म है। शरीर को जीवसे पृथक करने मे जीव को तीव्र संक्लेश एवं महान्

पीडा होती है परन्तु कानजी भाई इतनी बड़ी अधर्म की बात का पोषण करते है । द्रव्य हिसा और भाव हिंसा करने वालो को पापी नही कहना और उन्हे पापी बताने वालों को मिथ्या दृष्टि कहना क्या ये दि० जैन के लक्षण है ?

श्री कानजी भाई का चौथा आगम विपरीत मत

सुदेव, सुगुरु, सुशास्त्र की श्रद्धा भी मिथ्यात्व है उनके द्वारा धर्म नही होता है वे कहते हैं

"जिस प्रकार कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र की श्रद्धा और सुदेवादिक की श्रद्धा दोनों मिथ्यात्व है, तथापि कुदेवादिक की श्रद्धा में तीव्र मिथ्यात्व है और सुदेवादिक की श्रद्धा मे मंद ।"

(आत्म धर्म पृष्ठ ७९ अंक ६ वर्ष ४)

"देव शास्त्र गुरु पर हैं, धर्म का संबंध पर के साथ नहीं है धर्म पर के साथ संबंध नहीं रखता ।"

आत्मा का धर्म आत्मा में है, देव शास्त्र गुरु के प्रति शुभ भाव अशुभ भाव घटाये भले ही जाते हैं किन्तु धर्म की दृष्टि मे वह आदरणीय नहीं है ।

(आ. ध. पृष्ठ ४ अंक १ वर्ष २)

"पूजा अशुभ भाव को छोडने मात्र के लिये शुभ भाव में निमित है किन्तु उसमें धर्म नहीं होता क्योंकि पूजा में

भगवान के प्रति राग है और जो राग है वह धर्म नहीं हो सकता।

(आ. ध. पृष्ठ ४१ अंक ३ वर्ष २)

"भगवान की भक्ति का जो शुभ राग होता है वह राग निश्चय से अथवा व्यवहार से किसी भी प्रकार से धर्म नही है परन्तु जिसने इस राग मे ही धर्म मानरखा है और राग को आदरणीय माना है उसके धर्म तो नही परन्तु अपने वीतराग स्वभाव के अनादर रूप मिथ्यात्व का अनंत पाप क्षण क्षण मे उसके विपरीत मान्यता पर होता है राग को अपना धर्म मानना सो अपने वीताराग स्वभाव का अनादर है वह महान पाप है, यदि पर की कोई भी क्रिया मे कर सकता हू अथवा पुण्य से मेरे स्वभाव को लाभ होता है ऐसा माने तो वह मिथ्या दृष्टि है वह क्रिया कांड करके और त्याग करके मर जाय तो भी वह साधु नही है, त्यागी नही है श्रावक नही है जैन नही है।"

(आ. ध. पृष्ठ ६७ अंक १० वर्ष २)

"शुभ भाव को धर्म मानकर अथवा लाभ कारक मानता है सो अज्ञानता है।"

(आ ध. पृष्ठ ४० अंक ३ वर्ष २)

"यदि कोई जीव सच्चे देव गुरु शास्त्र को पहचान कर कुदेवादिक का सेवन छोड दे तो उतने मात्र से धर्म नही

हो जाता ।"

(आत्म धर्म पृष्ठ ४० अंक ३ वर्ष ४)

"साक्षात् तीर्थंकर देव पृथक है और तू पृथक है उनकी वाणी अलग है । इसलिये वह तुझे कदापि सहायक नहीं हो सक्ती हैं ऐसे माने बिना स्वतन्त्र तत्व समझ में नहीं आ सकेगा ।"

(आ. ध. पृष्ठ १६ अंक १ वर्ष ४)

दिगम्बर जैन आगम

जहा सुदेव (अर्हंत देव) आदि की श्रद्धा को भी श्री कान जी भाई मिथ्यात्व बताते है वहा नदीश्वर द्वीप आदि क्षेत्रो मे अक्रित्रम चैत्य चैत्यालयो की श्रद्धा भक्ति से देवगण सम्य क्त्व प्राप्त करते है । परन्तु वे तो देव शास्त्र-गुरु तथा सा-क्षात् तीर्थंकर को भी पर पदार्थ मान कर उन से जीव का कोई लाभ नही वताते है भगवान कुन्द कुन्द स्वामी रयणसार में दाणं पूजा मुक्खो सावय धम्मो" इत्यादि गाथाओ द्वारा मुनिदान और देव पूजा को श्रावक के लिये मुख्य धर्म बताते है और आचार्य पद्मनदि आदि महान् आचार्यों को छोड कर श्री-कानजी भाई जिन कुन्द कुन्द आचार्य को अपना गुरु कहते है उनको बात मानने को तयार नही है, और-देवशास्त्र गुरु को पर बताकर उनसे कोई लाभ नही बताते है ? आ-श्चर्य को बात तो यह है कि स्वयं जिन मन्दिर बनबाते है ।

मुनि समागम से उनके उपदेश से कितना लाभ होता है वज्रनाभि चक्रवर्ती ने मुनि क्षेमंकर महाराज के उपदेश से तुरन्त चक्रवर्ती पद का त्याग कर मुनि दीक्षा धारण करली मुनिराज के उपदेश के बिना अनादि मिथ्या दृष्टि को सम्याग् दर्शन कभी नही हो सकता है यह नियम है परन्तु कानजी भाई तीर्थंकर तक के उपदेश से कोई लाभ नही बताते है। मुनिदान की महिमा और उसका फल कितना है यह बात राजा श्रेयास के दान से प्रगट है मुनियो के उपदेश से जगत् का कल्याण होता है। शास्त्रो के स्वाध्याय से कितना कल्याण होता है और तत्व बोध होता है यह बात प्रत्यक्ष है आज यदि पूर्वाचार्य हमारे लिये शास्त्रों की रचना नही कर जाते तो जैन जगत् तत्व ज्ञान से शून्य बन जाता और जैन धर्म के द्वारा होने वाले महान कल्याण से रहित ही रहता परतु नये पथ का प्रचार करने बाले श्री कानजा भाई देव गुरू शास्त्र से कोई हित या लाभ नही वताते है। आश्चर्य तो यह है कि सोनगढ मे समय सार को प्रत्येक व्यक्ति के हाथमे देकर उसका अर्थ दिन मे तीन वार स्वय वे क्यो करते है जव कि शास्त्र से कोई लाभ नही होता है।

यदि वे थोडी भी संस्कृत जानते होते तो न्याय शास्त्र को समझ लेते परंतु स्वय अज्ञानी बने हुऐ है और निमित्त कर्त्ता मानने बालो को मिथ्या दृष्टि कहते हैं उन्हें यह बोध

नही है कि निमित कर्ता भिन्न होता है और उपादान कर्ता भिन्न होता है उपादान कर्ता स्वय अपने उपादान के गुण धर्म को बदल लेता है, किन्तु निमित कर्ता केवल उस के परिवर्तन मे वाह्य सहायता करता है। इस विषय मे अधिक लिखना अनावश्यक है समाज देव गुरु शास्त्र के द्वार होने वाले महान् लाभ को भली भाँति समझता है। और उन तीनो की श्रद्धा भक्ति द्वारा रत्नत्रय प्राप्ति एव मोक्षमार्ग मे तत्पर है वह ऐसे मिथ्या मन्तव्यो को ही मिथ्या समझता है।

श्री कानजी भाई का पांचवा आगम विपरीत मत

शुभभाव एव पुण्य मे भी धर्म नही है

वे कहते है.--

"पुण्य करते २ धर्म होगा, इस मान्यता का निषेध है पुण्य से न तो धर्म होता है और न आत्मा का हित इससे निश्चत हुआ पुण्य धर्म नही है। धर्म का अ ग नही है। धर्म का सहायक भी नही है जब तक अतरंग मे पुण्य इच्छा विद्यमान है तब तक धर्म की शुरुआत भी नहीं अतः पुण्य की रुचि धर्म मे विघ्न कारिणी हैं।"

(आ. ध. पृष्ठ ८६ अंक ६ वर्ष १)

"जैसे गर्मी के दिनो मे किसी छोटे बालक को पतला दस्त हो जाय और वह उसे चाटने लगे तो वह उसके ठंडक

से संतुष्ट होता है यह उसकी मात्र अज्ञानता ही है इसी-प्रकार चैतन्य मूर्ति भगवान, अविकारो आत्मा, सभी विकल्पो से पृथक है उसे भूलकर अपनी कल्पना से माने गये धर्म के नाम पर और अपने हित करने के नाम पर शुभ भाव को ठीक मानकर संतुष्ट होता है और मानता है इससे कुछ अच्छा होगा वह उस बालक के समान अज्ञानी है जो विष्टा को अच्छा मान रहा है।"

(समय सार प्रवचन भाग १ पृष्ठ ४३१)

"जिसे ज्ञानियो ने विष्टा - मान कर छोड दिया है ऐसे पुण्य को अपना मान रहा है जो व्यभिचार हैं।"

(समय सार प्रवचन भाग दूसरा पृष्ठ २१२)

"वह अपनी भगवतता को भूल कर पुण्य पाप की विष्टा को आदर करता है किन्तु उसे यह भान नहीं है कि इसप्रकार तो अविकारी स्वतंत्र स्वभाव की हत्या होती है।"

(समय सार प्रवचन भाग २ पृष्ठ १६८)

"दान पूजा इत्यादि शुभ भाव है और हिंसा असत्य आदि अशुभ भाव हैं उन शुभा शुभ भावों के करने से धर्म होता है यह मानना तो त्रिकाल मिथ्यात्व है।"

(समय सार प्रवचन भाग दूसरा पृष्ठ ६)

दिगम्बर जैन आगम

पाप तो ससार का ही कारण है और जबतक आत्मा मे मिथ्यात्व का उदय रहता है सम्यग्दर्शन नहो होता है तबतक अशुभ पुण्य भो ससार का कारण हे किन्तु जीव शुभ भाव जन्य शुभ पुण्य है उसे ससार का कारण बताना शास्त्र विरुद्ध है गोम्मट सार मे स्पष्ट लिखा है जो सम्यग्दर्शन पूर्वक पुण्य होता है वह मोक्षका कारण है। यही बात आचार्य कु द कु द स्वामी ने रयणसार आदि ग्र थो मे लिखी है। और उन्होने शुभ पुण्य को धर्म बतलाया है। पुरुषार्थ सिद्धयु पाय मे स्पष्ट रूप से लिखा है रत्नत्रय बध का कारण नही है किन्तु उसके साथ जो शुभ रागाश (प्रशस्त-राग) है वह शुभ बध का कारण है और उससे परम्परा मोक्ष की प्राप्ति होती है। शुभ पुण्य से बज्र वृषभ नाराज सहनन वाला उत्तम शरीर, मनुष्यगति, उत्तम कुल जिनेन्द्र दर्शन तीर्थ बदना, मुनि दर्शन समवशरण लाभ, तीर्थंकर प्रकृति का बध आदि मोक्ष के साधन शुभ पुण्य से ही मिलते है। तीर्थंकर प्रकृति जैसे सर्वोपरि महान शुभ पुण्य को भी ससार का कारण बताना सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है। क्यो कि तीर्थंकर पुण्य प्रकृति का फल सब जीवो का कल्याण करना एवं उन्हे मोक्ष मार्ग मे लगाना ही है। तीर्थंकर प्रकृति का उदय तेरहवे गुण स्थान मे होता है। उससे केवलज्ञान पूर्वक दिव्य-

वनि खिरती है। उससे जीवो को रत्नत्रय की प्राप्ति होती और मोक्ष मार्ग चालू हो जाता है। यही दिगम्बर जैन सिद्धान्त है सम्यग्दर्शन पूर्वक शुभ भाव एव शुभ पुण्य से सर्वार्थ सिद्धि मे इन्द्र पद मिलता है जो एक भवधाररण कर मोक्ष को नियम से चला जाता है ऐसे पुण्य को भी संसार का कारण बताना जिनागम का लोप करना है।

श्री कानजी भाई का छटवां आगम विपरीत मत

व्यवहार क्रिया में धर्म मानना मिथ्यात्व है वे कहते हैं

"लोग बाह्य क्रिया तथा राग में व्यवहार मानते है किन्तु वह तो व्यवहार भी नहीं है, सच्चे देव, गुरु, शास्त्र, की श्रद्धा तत्वों का ज्ञान छह कायिक जीवों की दया का पालन व्यवहार है। वह भी धर्म का कारण नहीं है।"

(आ. ध. पृष्ट १६ अंक १ वर्ष ४)

"पंच महाव्रत की शुभ वृत्ति भी नही करके मात्र चैतन्य अनुभव मे लीन हो ऐसी भावना राखनी।"

(आ. ध. अंक १२ वर्ष ४)

"व्यवहार के आश्रय से मोक्षमार्ग होना मानते हैं ऐसे जीव तो तीव्र मिथ्या दृष्टि हैं उनमे तो सम्यक्त्व होने की पात्रता ही नहीं है।" (आ. ध. अंक १२ वर्ष ६)

श्रावक के बारह व्रत

"जो व्यवहार धर्म क्रिया में शुभ क्रिया में लीन है वह

भगवान का शत्रु है शुभोपयोगी मिथ्या दृष्टि है उसके परि-णाम में वर्तमान में शुभ भाव है किन्तु शुभ भाव करते २ मिथ्यादृष्टि पना तीन काल में भी नहीं टल सकता प्रत्युत शुभ करते २ उसे लाभ कारक मानने में मिथ्यात्व की पुष्टि होती है ।" आदि (भगवान श्री कुन्द कुन्द कहान जैन ग्रन्थ माला पुष्प १३ पृष्ट ४३)

दिगम्बर जैन आगम

व्यवहार को सर्वथा मिथ्या बताना भी आगम विरुद्ध है उसको मिथ्या बताने से आचार का ही लोप हो जाता है सक्षेप मे उसका खुलासा इस प्रकार है ।

प्रमाण वस्तु स्वरूप को पूर्ण रूप से सर्वाङ्ग रूप से ग्रहण करता है । नय उसका एक अ श है। निश्चय और व्यवहार दौनो ही वस्तु के एक एक अ श को ग्रहण करते है । यदि हम एक अ श को मिथ्या समझे तो दूसरा अ श भी मिथ्या ठहरता है । क्योकि नय सापेक्ष होता है वस्तु की शुद्ध पर्याय को निश्चय नय कहते है । उसको मिश्रित पर्याय कोई असत्य वस्तु नही है किन्तु वास्तविक सत्य है । जैसे आत्मा शरीर और कर्मो से जकडा हुआ है यह बात असत्य नही है प्रत्यक्ष अनुमान आगम से सिद्ध है भेद इतना ही है कि निश्चय नय आत्मा की पूर्ण शुद्ध अवस्था मे माना जाता है व्यवहार नय उससे पहिले उसको अशुद्ध या शुद्धा शुद्ध

मिश्रित अवस्था तक रहता है। दूसरे शब्दो मे निश्चय नय द्रव्य दृष्टि को विषय करता है और व्यवहार नय पर्याय दृष्टि को विषय करता है और द्रव्य पर्याय दोनो ही वस्तु का स्वरूप है। निश्चय साध्य है, व्यवहार साधक है

शुद्धात्मा की प्राप्ति व्यवहार से ही होती है इसीलिये निश्चय साध्य और व्यवहार साधक है (भगवत कुन्द-कुन्द स्वामी ने जहा समयसार मे आत्मा की शुद्ध अवस्था का लक्ष्य रखकर मुख्यता से उसी का वर्णन कियाहै वहा उन्ही कुन्द-कुन्द स्वामी ने रयणसार आदि ग्रन्थो में निश्चय के साधक व्यवहार को मुख्यता से वर्णन किया है एक ही आचार्य जब दोनो को उपादेय और साध्य-साधक स्पष्ट रूप से बता रहे है तब व्यवहार को मिथ्या या हेय बताना भगवत कुन्द कुन्दाचार्य को अप्रमाण ठहराना है अथवा उनके बताये हुये सिद्धान्त को मिथ्या बताना है। सभी आचार्यो ने व्यवहार से ही मोक्ष-मार्ग और मोक्ष-प्राप्ति बताई है।

जितना भी क्रियात्मक आचार है वह सब धर्म है और वह व्यवहार धर्म है यदि व्यवहार को हेय और त्याज्य माना जाय तो मास-मदिरा का सेवन करने वाला हिंसा, झूठ चोरी, कुशील सेवन करने वाला। उन पापो को करता हुआ भी सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती एवं महाव्रती, कहा जासक्ता है क्या ? और मास मदिरादिक एव हिंसादिक का त्याग करने वाला

व्यक्ति धर्म शील माना जावेगा कि नही ? यदि धर्म शील माना जावेगा तो व्यवहार मिथ्या क्यो ?

अणुव्रत रूप श्रावक धर्म और महावृत रूप मुनि-धर्म और तपश्चरण आदि क्रियाएं सब व्यवहार रूप है यदि इस व्यवहार को मिथ्या या हेय माना जाता है तो फिर कोई श्रावक या मुनि क्यो बनेगा। फिर मोक्षमार्ग या मोक्ष प्राप्ति भी कभी किसी को नही हो सकती ?

दूसरी बात यह है कि छट्टे गुणस्थान वर्ती मुनि गुप्ति समिति-आदि धर्म का पालन करते है वह व्यवहार धर्म है। उसी से वे सातवें गुणस्थान मे पहुँच जाते है और वहाँ से श्रेणी चढ जाते है ऐसी अवस्था मे उत्तरोत्तर आत्म विशुद्धि व्यवहार धर्म से ही होती है यदि व्यवहार मिथ्या और त्याज्य है तो उससे उत्तरोत्तर प्रमत्त गुणस्थान (व्यवहार धर्म) मे सातिशय अप्रमत्त मे पहुँच कर क्षपक श्रेणी चढकर अतर्मुहूर्त मे केवल ज्ञान रूप सर्वोपरि महा विशुद्धि आत्मा मे कैसे हो जाती है ? अत व्यवहार को मिथ्या बताना ही मिथ्या है यही दिगम्बर जैन सिद्धान्त हैं।

आत्मा की विशुद्धता की दृष्टि से तेरहवा और चौदहवा गुणस्थान निश्चय नय का विषय होता है। वहाँ पर भी शरीर और कर्मोदय है इसलिये सयोग केवली अयोग केवली भगवान भी जो परम विशुद्धि परमात्मा है वे भी हेय और मिथ्या समझे जायेगे। क्योकि वहाँ भी व्यवहार शरीर और कर्मोदय का आत्मा से सबंध है।

श्री कानजी भाई का सातवा आगम विपरीत मत

उपादान में निमित्त कुछ नहीं करता है :

वे कहते हैं—निमित्त न मिले तो कार्य नही होगा यह मान्यता मिथ्या है पुत्र होने की योग्यता तो थी परन्तु निमित्त न मिला अतः नही हुआ, और जब निमित्त मिला तब हुआ इस मान्यता का अर्थ यह हुआ कि निमित्त ने कार्य किया। वह दो द्रव्यो की एकत्त्व बुद्धि ही है।

"अथवा माता पिता ने निमित्त का मार्ग ग्रहण नही किया अतः पुत्र नहीं हुआ यह बात भी मिथ्या है।,,

(वस्तु विज्ञानसार पृष्ठ ४१)

"पैट्रोल समाप्त हो गया इसलिये मोटर रुक गई,,। यह बात सच नहीं है। वस्तु विज्ञान सार पृष्ठ ४५।

'यह लकड़ी है उसमे ऊपर उठने की योग्यता है। जब मेरा हांथ उसके लिये निमित्त होता है तब वह उठती है ऐसा मानने वाले जीव वस्तु की पर्याय को स्वतन्त्र नही मानते इसलिये मिथ्या दृष्टि है। जब लकड़ी ऊपर नही उठती तब उसमे ऊपर उठने की योग्यता ही नही। और जब उसमे योग्यता होती है तब वह स्वय ऊपर उठती है

(वस्तु विज्ञानसार पृष्ठ ५४)

प्रमाण है जो निमित्त की अनिवार्य सहायता उपादान आत्मा की परम विशुध्दता मे अथवा सिध्द पद प्राप्ति मे प्रधान कारण पने को स्पष्ट वताते हैं। विना निमित्त की सहायता के आत्मा स्वय कुछ भी नही कर सकता है।

इसी प्रकार दुर्गतियो और सुगतियो मे जाने के लिए पाप कर्म और पुण्य कर्म निमित्त कारण है। अपने आप कोई जीव नरक-स्वर्ग नही जासकता है।

लोक मे भी प्रत्यक्ष देखा जाता है कि मकान, कपड़ा, खेती, व्यापार लेनदेन आदि सव कार्य निमित्त की सहायता से मनुप्य करते हैं। माता पिता के सयोग से ही सतान उत्पन्न हो सकती है अन्यथा कभी नही। भोजन पानी बिना कोई ससारी जीव अधिक दिन तक नही जी सकता है। वैद्य, डाक्टरो के इलाज से मरणशैया पर पडा हुआ रोगी भी निरोग हो जाता है उसमे भी मूल कारण आयुष्कर्म है, वह भी तो निमित्त ही है। गुरु, पुस्तक आदि साधनो से ही वालक विद्वान वन जाता है। एक पत्र वाहर से अपने कुटुम्वी का अनिप्ट सूचक आता है तो आत्मा मे गहरा धक्का लगता है, वह दुखी हो जाता है। यदि पत्र मे लाख रुपयो के मुनाफा की वात लिखी आती है तो आत्मा मे हर्ष हो जाता है, ये सव बाते उपादान आत्मा के भावो मे विचित्रता लाने के लिए निमित्त की सहायता को स्पष्ट सिध्द करती है।

श्री कानजी भाई का सातवा आगम विपरीत मत

उपादान में निमित्त कुछ नहीं करता है

वे कहते है—निमित्त न मिले तो कार्य नहीं होगा यह मान्थता मिथ्या है पुत्र होने को योग्यता तो थी परन्तु निमित्त न मिला अतः नही हुआ, और जव निमित्त मिला तव हुआ इस मान्यता का अर्थ यह हुआ कि निमित्त ने कार्य किया। वह दो द्रव्यो की एकत्व बुद्धि ही है।

"अथवा माता पिता ने निमित्त का मार्ग ग्रहण नही किया अतः पुत्र नहीं हुआ यह वात भी मिथ्या है।,,

(वस्तु विज्ञानसार पृष्ठ ४१)

"पैट्रोल समाप्त हो गया इसलिये मोटर रुक गई,,। वह बात सच नहीं हैं। वस्तु विज्ञान सार पृष्ठ ४५।

'यह लकड़ी है उसमे ऊपर उठने की योग्यता है। जव मेरा हांथ उसके लिये निमित्त होता है तव वह उठती है ऐसा मानने वाले जीव वस्तु की पर्याय को स्वतन्त्र नही मानते इसलिये मिथ्या दृष्टि है। जब लकड़ी ऊपर नही उठती तव उसमे ऊपर उठने की योग्यता ही नही। और जब उसमे योग्यता होती है तव वह स्वयं ऊपर उठती है

(वस्तु विज्ञानसार पृष्ठ ५४)

प्रमाण है जो निमित्त की अनिवार्य सहायता उपादान आ।
की परम विशुद्धता मे अथवा सिद्ध पद प्राप्ति मे प्रद
कारण पने को स्पष्ट बताते हैं। बिना निमित्त की सहाय
के आत्मा स्वय कुछ भी नही कर सकता है।

इसी प्रकार दुर्गतियो और सुगतियो मे जाने के लि
पाप कर्म और पुण्य कर्म निमित्त कारण है। अपने आप व
जीव नरक-स्वर्ग नही जासकता है।

लोक मे भी प्रत्यक्ष देखा जाता है कि मकान, कप
खेती, व्यापार लेनदेन आदि सब कार्य निमित्त की सहाय
से मनुष्य करते हैं। माता पिता के सयोग से ही सतान उत्
हो सकती है अन्यथा कभी नही। भोजन पानी बिना क
ससारी जीव अधिक दिन तक नही जी सकता है। वै
डाक्टरो के इलाज से मरणशैया पर पडा हुआ रोगी
निरोग हो जाता है उसमे भी मूल कारण आयुष्कर्म है, व
भी तो निमित्त ही है। गुरु, पुस्तक आदि साधनो से
बालक विद्वान बन जाता है। एक पत्र बाहर से अपने कुटुम
का अनिष्ट सूचक आता है तो आत्मा मे गहरा धक्का लग
है, वह दुखी हो जाता है। यदि पत्र मे लाख रुपयो
मुनाफा की बात लिखी आती है तो आत्मा मे हर्ष हो जा
है, ये सब बाते उपादान आत्मा के भावो मे विचित्रता ला
के लिए निमित्त की सहायता को स्पष्ट सिद्ध करती हैं

श्री कान जी भाई ने समय सार के स्वाध्याय से धर्म परिवर्तन किया । क्या यह निमित्त की सहायता का ज्वलन्त उदाहरण नही है । कुन्द कुन्द स्वामी को वे गुरु या उपकारी क्यो मानते हैं ।

सिध्द जीव पद्मासन या खड्गासन रूप मे पुरुषाकार ही क्यो रहता है, जबकि आत्मा के प्रदेश लोकाकाश के बराबर असंख्यात है तब वह सिध्द आत्मा समस्त लोकाकाश मे व्याप्त क्यो नही हो जाता है जैसा कि केवली समुध्दात मे होता है । सभी सिध्द अपने अपने शरीर के प्रमाण ही क्यो रहते है ? यह निमितकारण की बलवता से ही होता है । सिध्दात्मा केवल निश्चय नय का ही विषय है, वहा भी शरीर प्रमाण रूप आत्म प्रदेशो का का रहना निमित की सहायता से ही होता है ? इसी प्रकार जबकि आत्मा का ऊर्ध्व गमन स्वभाव है, और आकाश अनन्तानन्त है, तो सिध्दात्मा लोकाकाश तक ही क्यो रुक जाता है, अलोकाकाश मे क्यो नही चला जाता है । इसका भी मुख्य कारण धर्म द्रव्य है । वह धर्म द्रव्य लोकाकाश तक ही है, इसलिये वह निमित कारण सिध्दात्मा को आगे नही बढने देता है । इस प्रकार निमित और उपादान का परस्पर कार्य कारण भाव है, विना निमित्त के उपादान कुछ नही कर सकता, और विना

उपादान मे शक्ति प्राप्त हुये निमित्त भी कुछ नही कर सकता है। इसका खुलासा यह है कि जबतक उपादान मे कार्य रूप होने की पात्रता अथवा योग्यता नही होगी तबतक निमित्त कारण कुछ भी नही कर सकता जैसे अभव्य जीव को कितना हो बलवान निमित्त कारण क्यो न मिले वह कभी मोक्ष प्राप्त नही कर सकता । यदि बीज घुना हुआ है या भुना हुआ है या थोथला है तो ऐसे बीज को कितना ही मिट्टी, पानी, खाद आदि दिया जाय और कितनी भी सुन्दर उर्बरा भूमि हो तो भी वैसे बीज मे अंकुरोत्पत्ति कभी भी नही हो सकती है। इसलिए उपादान की योग्यता भी कार्य सिध्दि मे आवश्यक है। इसी प्रकार निमित्त की सहायता भी आवश्यक है।

मोक्ष प्राप्ति के लिए द्रव्यलिंग जैसे प्रधान है, उसी प्रकार भावलिंग की भी आवश्यकता है। अत उपादान मे निमित्त कारण कुछ नही कर सकता है यह श्री कानजी भाई का कहना आगम से सर्वथा विपरीत है।

श्रावक लोग तीर्थ-वंदना, जिनेन्द्र पूजन, मुनिदान, शास्त्र स्वाध्याय और व्रताचरण आदि निमित्त कारणो से ही आत्मविशुध्दि एव आत्म कल्याण करते हैं। इसलिए निमित्त के बिना आत्मा का उध्दार असम्भव है, यही दिगम्बर जैन सिध्दान्त है।

भगवान कुन्द कुन्द स्वामी ने गिरनार सिद्धक्षेत्र की वन्दना की थी। भरत चक्रवर्ती ने जिनेन्द्र प्रतिमा के दर्शन को महान कल्याण का साधन माना था। राजा श्रेयांस मुनि दान से ही मोक्ष पात्र बन गया। सुकमाल ने मुनिराज के उपदेश से ही घोर तपश्चरण किया। उपादान निमित्त का सम्बन्ध अनिवार्य है। दोनों के मिले बिना कार्य सिद्धि कभी नहीं हो सकती है।

घड़े रूप पर्याय में मिट्टी के गुणों का परिणमन और उस मिट्टी की आकृति का परिणमन ये दोनों पर्यायें (गुण पर्याय और व्यंजन पर्याय) मिट्टी में ही होती हैं परन्तु निमित्त कारण कुम्हार चाक आदि बाहरी सहायक हैं। ये निमित्त कर्त्ता हैं मिट्टी उपादान कर्त्ता है यह बात न्याय शास्त्र नहीं पढ़ने से ही कानजी भाई नहीं समझ सके हैं। जो पर को कर्त्ता की बात कहकर निमित्त सहायक का निषेध करते हैं कितनी भारी भूल है। उनका वैसा मानना और उपदेश देना जनता को धर्म साधन से विमुख बनाना है। इसलिए उनका निमित्त का निषेध करना सर्वथा आगम विपरीत है।

श्री कानजी भाई का आठवां आगम विपरीत मत

"सब पदार्थों में क्रमबद्ध पर्याय ही होती हैं"

"जो कुछ होना है वही होगा। उसमे पुरुषार्थ करना और प्रयत्न करना व्यर्थ है।"

अर्थात अपने समय के अनुसार जिस समय जो भी होता है क्रम से वही होगा। उसमे किसी भी प्रयत्न या पुरुषार्थ से कोई परिवर्तन नहीं हो सका है, अथवा जो सर्वज्ञ ने देखा है सो होगा उसमे प्रयत्न या पुरुषार्थ करना व्यर्थ है। आदि

दिगम्बर जैन आगम

श्री कानजी भाई का इस क्रमबध्द पर्याय कहने का लक्ष्य केवल यही है कि जो मोक्ष प्राप्ति के लिए अथवा आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए जो पुरुषार्थ किया जाता है वह सब निरर्थक है। उनकी दृष्टि मे यह समाया हुआ है कि अणुव्रत महाव्रत धारण करना व्यर्थ है। मुनिलिग धारण करना व्यर्थ है। मुनिलिग धारण करना, तपश्चरण करना सब व्यर्थ है। भगवान का पूजन करना मुनिदान देना तीर्थ वन्दना करना, जीवो की रक्षा करना आदि सब व्यर्थ है। क्योकि आत्मा मे जब जो पर्याय होती है वह होके रहेगी। वे स्पष्ट कहते है कि बाहरी त्याग मत करो स्वय बैठे बैठे आत्मा शुध्द हो जायगा। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक

चारित्र आत्मा मे जब होना है तब स्वयं हो जायेगे। इसलिए धार्मिक क्रियाये मत करो आदि।)

परन्तु उनका यह कहना शास्त्राधार और लोक व्यवहार दोनो से बाधित है।

दिगम्बर जैन शास्त्रो मे क्रमबध्द पर्याय ही होती है ऐसा कही भी नही मिलेगा। प्रत्युत यही मिलेगा कि आत्मोध्दार के लिए और कर्मो का भार कम करने एवं उन्हे आत्मा से हटाने के लिए सदैव पुरुषार्थ करो। धर्म साधन करो। पांच पापो को छोडो। आरम्भ परिग्रह छोडो। व्रतो का पालन करो। सम्पत्ति कुटुम्ब आदि से ममत्व हटाकर मुनि बनकर कर्मों का नाश करो। यही शास्त्रो को उपदेश है।

क्रमबध्द पर्याय मानने से अविपाक निर्जरा कैसे बनेगी? वह तो तभी हो सकती है जबकि महा व्रत धारण कर परीषह उपसर्गों को सहन कर घोर तपश्चरण के द्वारा अनतानन्त पूर्व संचित कर्मो को बिना समय मे ही अर्थात जितनी स्थिति उन कर्मो की बधी है उससे बहुत पहिले ही हटा दिया जाता है। यह अविपाक निर्जरा आत्मा के तप पुरुषार्थ से ही हो सकती है।)

(जो निगोदिया जीव दो तीन चार इन्द्रिय वाले कर्मफल निर्जरा वाले अज्ञानी जीव बाधे हुए कर्मो का अपनी स्थिति

के अनुसार फल भोगते रहते हैं। और उनके कर्मो की निर्जरा क्रम इन से ही होती है। वह क्रम ने कही जायगी। वहाँ जीव का कोई पुरुषार्थ कर्म को दूर करने का नही है। इसलिए क्रमबद्ध पर्याय का एकान्त मानना सर्वथा शास्त्र विरुद्ध है।

इसी प्रकार कर्मों का उत्कर्षण और अपकर्षण भी पुरुषार्थ से होता है। राजा श्रेणिक ने सातवे नरक की स्थिति ३३ सागर की बाध करके भी क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त कर उसे घटा दिया और उस असख्याती वर्ष नरको मे दुःख भोगने के स्थान मे केवल ८४००० वर्षों की आयु रह गई। वे अब पहिले नरक मे हैं वहा से निकल कर इसी भरत क्षेत्र में पहिले महापद्म नामक तीर्थङ्कर होगे। यह आत्मा के पुरुषार्थ का ही फल है। भगवान भरत को भी परिणामो की तीव्रातितीव्र निर्मलता होने पर भी जगल मे जाना पड़ा वस्त्र एवं चक्रवर्तित्व की विभूति का त्याग करना पडा केश लुचन करना पड़ा तभी वे केवली बने। तीर्थङ्करो को भी त्याग करना पडता है। उसी का नाम मोक्ष पुरुषार्थ है।

अकालमृत्यु भी होती है भगवान उमा स्वामि आदि आचार्य गणो ने बताया है तब क्रमबद्धता कहा रही। गावो में जहाँ उच्च अनुभवी वैद्य, डाक्टर नही है अथवा आर्थिक परिस्थिति ठीक नही होंने से हजारो आदमी बिना इलाज

कराये मर जाते है। जहा साधन है वहा बच भी जाते है यह सब प्रयत्न का ही फल है। कर्मो की निर्जरा बिना आत्मीय पुरुपार्थ के असम्भव है।

अनन्तानुवन्धी का विसयोजन भी वाह्य और अन्तरग विशुध्दि से ही होता है।

यदि यह कहा जाता है कि जो सर्वज्ञ ने देखा है वही होगा तो इस बात से भी क्रमवध्द पर्याय सिध्द नही होती है। सर्वज्ञ देव के केवल ज्ञान मे उन त्रिकाल त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थो का प्रतिभास होता है जो प्रति क्षण क्रम और अक्रम से परिणमन करते हैं। एक आदमी कभी धीरे२ चलता है कभी दौडता है, कभी खड्डे मे भी गिर जाता है। वहा क्रम-वध्द गमन कहां रहा। रेलगाडी प्रारम्भ मे धीरे चलती है। फिर तेज चलती है फिर रुक जाती है। परमाणु कभी मन्द गति से दूसरे परमाणु के ऊपर ही एक समय मे आता है कभी तेज गति से १४ राजू तक एक समय मे पहुँच जाता है किसी भी वस्तु मे निमित्त कारणो के साहाय्य से कभी क्रम कभी अक्रम होता है। आत्मा मे कभी हर्ष कभी विषाद होता है। कभी तीव्र राग कभी मन्द राग होता है। क्रमवध्द पर्याय का मानना लोकशास्त्र दोनो से विरुध्द है।

सर्वज्ञ के ज्ञान मे जो झलका है सो ही होगा इसमे तो कोई सन्देह नही है परन्तु उनके ज्ञान मे क्रम और अक्रम

दोनो प्रकार की पर्यायें झलकती हैं। अत श्री कानजी भाई का क्रमबद्ध पर्याय का कथनशास्त्र विपरीत है और मनुष्यो को निकम्मा बनाने वाला है तथा धर्म साधना से विमुख बनाने वाला है।

श्री कानजी भाई का नौवां आगम विपरीत मत

वर्तमान के मुनि सभी द्रव्यलिंगी (मिथ्यादृष्टि) हैं

वे कहते है कि—"आजकल जगत मे त्याग के नाम पर अन्धाधुन्धी चल रही है। कुंजडे काछी जैसो ने भटे भाजी की तरह व्रतो का मूल्य कर दिया है।"

(समयसार प्रवचन भाग ३ पृ० १३)

"कल के भिखारी ने आज बेष बदल लिया, स्त्री, कुटुम्ब को छोड़ दिया तो इससे क्या वह त्यागी हो गया? सबो ने मिलकर त्यागी मान लिया तो क्या बाह्य सयोग वियोग से त्याग है? अन्तरंग मे कुछ परिवर्तन हुआ है या नही वह तो देख। बाहर से दिखाई देता है कि अहो कैसा त्यागी। स्त्री नही, बच्चे नही जंगल मे रहता है ऐसे बाह्य त्याग को देखकर बड़ा मानते है, लेकिन त्याग का क्या स्वरूप है यह नहीं समझते।"

(समयसार प्रवचन भाग ३ पृ० ११)

"श्रावक के बारह व्रत और मुनियो के पंच महाव्रत विकार है।" (समयसार प्रवचन भाग ३ पृ० १२)

"वाह्यतप परिषह इत्यादि क्रियाओं से मानता है कि मैने सहन किया है इसलिए मेरे धर्म होगा किन्तु उसकी दृष्टि वाह्य मे है इसलिए धर्म नहीं हो सकता।"

(समयसार प्रवचन पृ० ३०८)

"लोग मानते हैं कि खाना पीना छोड़ देना इसलिये तप हो गया और निर्जरा हो गई, उपवास करके शरीर को सुखा लिया इसलिये अन्दर धर्म हुआ होगा। इस प्रकार शरीर की दशा से धर्म को नापते हैं।"

दिगम्वर जैन आगम

श्री कानजी भाई की ऊपर की पंक्तियो को पढने से हर कोई थोडा भी समझदार यह अच्छी तरह समझ लेगा कि ये वर्तमान मुनियो से और पाच महाव्रत, परीषह सहन, उपवासादिधारण करने से कितनी भारी घृणा करते है। वे आज कल के मुनियो को और त्यागियो को तो कूजडा बता रहे हैं और उनके त्याग धर्म को भटे भाजी बता रहे हैं।

इतना ही नही किन्तु वे आजकल के मुनियो को नगा भेष रख लेने वाले भिखारी बता रहे है। वे स्पष्ट लिख रहे

है कि स्त्री, कुटुम्ब छोडने से और जगल मे रहने से त्यागी नही होता है। वे यह भी कहते है कि सबों ने मिलकर उसे त्यागी (मुनि) मान लिया तो क्या वह त्यागी हो गया। वह त्याग का स्वरूप भी नही जानता। इन खुले विचारो से और उसी प्रकार के प्रचार से मुनि धर्म और त्याग की वे किन शब्दो मे और कितने मलिन गहरे घृणित भावो मे मुनि निंदा और त्याग की खिल्ली उडा रहे है। ऐसे प्रचार से आज के जगत मे मुनियो और त्याग धर्म की कैसी अवहेलना और तिरस्कार इन-कानजी भाई के द्वारा हो रहा है और उनके अनुयायियो द्वारा होगा। यह बात सोचकर किस धर्मात्मा के हृदय मे गहरा धक्का और मानसिक पीडा नही होगी ?

ऐसी बातें कहने वाले को कौन देव शास्त्र गुरु श्रध्दानी दिगम्बर जैन समझेगा, क्या पचमकाल मे और वर्तमान मे सच्चे भावलिंगी मुनि नही होते है ऐसा समझना और कहना ही तीव्र मिथ्यात्व है। आजकल के मुनियो के निकट रहकर कानजी भाई और उनके अनुयायी, उनकी चर्या, उनकी धर्म साधना, उनके मूल गुणो मे दृढता, कठिन तपश्चर्या, परीषह और उपसर्गों की सहनशीलता आदि सभी बातो को देखें तो सही, हम तो सैकडो बार उनके चरणो मे रहकर भलीभांति देख चुके है और उनकी कठिन तपश्चर्या को देखकर उनके चरणो मे अपना सिर रखकर मन बचन

काल से उनकी भक्ति मे अपना पूरा कल्याण समझते हैं और यह अनुभव करते है कि इस हीन शरीर और हीन समय मे भी ये वीतरागी मुनि चतुर्थ काल के समान अपने भावलिंग और द्रव्य लिंग मे कितने सावधान है। यह सब देखकर श्रद्धा से मन उनकी ओर स्वयं झुक जाता है। आज कल पर्व के दिनो मे अनेक श्रावक १०–१० उपवास करते है। और ३२–३२ उपवास भी कर रहे हैं। कितना आश्चर्यकारी तप है। ऐसे त्याग और तप को भी भटे भाजी कानजी बताते है और उन त्यागियो और मुनियों को भिखारी और कूंजडा कह रहे हैं हम उन्हे किन शब्दो मे कहे। हमको तो ऐसे लोगो मे समझदारी, शिष्टता और सभ्यता भी नही दीखती। साधारण त्याग की भी लोग प्रशसा करते है फिर महाव्रती मुनियो की तो वृत्तिचर्या सदैव हृदय से वन्दनीय है। यदि मुनियो का सद्भाव आज नही दिखाई देय तो हम यह अनुभव करते हैं कि जैन जगत् धर्म शून्य बन जायगा। और त्याग का सर्वोच्च आदर्श नष्ट हो जायगा। फिर आश्चर्य है कि अव्रती लोग भी मुनियो की अत्यन्त निद्य शब्दो मे सरासर झूठी आलोचना करे और त्याग के महत्व को गिराये यह देखकर दुख होता है।

फिर समयसार प्रवचन का नाम दिया जाता है साधारण लोग समझते हैं कि समयसार में श्री भगवत् कुन्द कुन्द ने

नही है। बन्दनीय भी नही है। एकाध कुछ शिथिल है। वे नगण्य है। बाकी आज भी साधु वर्ग महान विवेकी, विद्वान तपस्वी है जिससे समाज का, देश का एव राष्ट्र का सच्चा हित हो रहा है।

कानजी भाई की नासमझी

"पच महाव्रत का अनन्त बार पालन किया, और आहारादि के समय कठिन अभिग्रह (नियम वृत्ति परिसख्यान) भी ग्रहण किये जैसे– मोती नाम की बाई हो, मोती वाली छाप की साडी पहने हो और वह आहार की प्रार्थना करे तो ही आहार ग्रहण करू ऐसा कठिन अभिग्रह (नियम) भी अनन्त बार किया, सयम पालन किया, इन्द्रिय दमन किया, त्याग वैराग्य भी बहुत लिया, किन्तु अविकारी आत्मा की प्रतीति नही हुई। आत्मा को भूलकर मौन रहा और ६ मास तक के उपवास भी किये। ऐसे साधन अनन्त बार करने पर भी आत्म स्वभाव प्रकट नही हुआ।'

(समयसार प्रवचन पृ० १६६)

ऊपर के उद्दरण (श्री कानजी भाई के वाक्यो) को ध्यान से पढने वाले आश्चर्य करेगे कि कानजी भाई ऐसे सर्वज्ञ बन गये हैं कि छह माह तक उपवास करने तक महामुनियो की घोर तपश्चर्या को भी वे मिथ्यात्व बता रहे हैं। छह माह

समझे वे सभी मुनियो पर अनन्त वार का पाठ लागू करने लगे। इसे नासमझी के सिवा और क्या कहा जाय ? और कहा जाय तो कर्मोदय की बलवत्ता कही जाय। अध्यात्मा मुनियो के लिए ऐसी बात कौन कह सकता है। कानजी भाई बिना सकोच निधड़क समस्त मुनियो को कूजड़ा और भिखारी बता रहे है। यह बहुत खेद की बात है।

जो मुनि इन्द्रिय दमन करता है सयम पालन करता है कषायो पर विजय पाता है। उपवासादि करता है। परीषह उपसर्ग सहता है ऐसे मुनि को देखकर कानजी भाई किस हेतु से या कौन से दिव्य ज्ञान से यह कह सकते है कि वह मुनि अनन्त वार मुनि-पद धारण कर चुका है या धारण करेगा उसे आत्म ज्ञान नही है। क्या वे सर्वज्ञ है ? कोई भी श्रद्धावान पुरुष तो ऐसे अपनी चर्या मे सावधान मुनि को मन बचन काय से नमस्कार ही करेगा और भक्ति से उन्हे आहार देगा।

कानजी भाई के कथन से तो स्पष्ट है कि वे मुनिमात्र के और त्याग धर्म के पूरे विरोधी है।
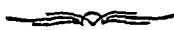
श्री कानजी भाई का दसवां आगम विपरीत मत
केवल ज्ञान हर आत्मा में एक अंश प्रत्यक्ष रहता है

वे कहते हैं कि—"केवल ज्ञान कभी भी सम्पूर्णतया आवृत नहीं होता है क्योंकि यहि सम्पूर्णतया आवृत हो जाय तो ज्ञान का अभाव हो जाय और ऐसा होने से जीव को जड़त्व का प्रसंग आजाय किन्तु ऐसा होना अशक्य है अर्थात केवल ज्ञान का अमुक भाग तो जीव चाहे जिस अवस्था के समय भी खुला रहता है।"

"केवल ज्ञान पूर्ण स्वरूप है और मति ज्ञान अधूरा ज्ञान है अर्थात केवल ज्ञान का अंश है। जिसका एक अंश प्रत्यक्ष है वह अंशी भी प्रत्यक्ष ही है। एक अंश प्रत्यक्ष हो और अंशी प्रत्यक्ष नहीं हो यह नहीं हो सकता। इस प्रकार मति ज्ञान केवल ज्ञान का अंश होने से अंश प्रत्यक्ष है। वह अंश भी प्रत्यक्ष ही है। इस न्याय के अनुसार मति ज्ञान मे केवल ज्ञान प्रत्यक्ष ही है।"

(आ० ध० पृ० १११ अङ्क ७ वर्ष २)

दिगम्बर जैन आगम

केवल ज्ञानावरण कर्म सर्वघाति कर्म है, वह केवल ज्ञान को पूरा आवृत्त करता है ढक लेता है। उसका एक अंश

प्रकट नही होता है। यदि एक अ श उसका प्रकट मानाजाय तो वह केवल ज्ञान क्षयोप शम ज्ञान हो जायगा। अत वह पूरा एक साथ ही प्रगट होता है। ज्ञान का अभाव तो इस-लिए नही हो सकता है कि मतिज्ञान का जघन्य रूप सब जीवो मे रहता ही है। केवल ज्ञान को एक अ श मे खुला मानना यह सर्वथा आगम विरुध्द और श्री कानजी भाई की अजानकारी को प्रगट करता है। वे जब आत्मा मे कर्मो का ही अभाव बताते है तब सर्वघाति आदि बातो को वे क्यो समझे सर्वज्ञ वाणी का ही वे तो लोप कर रहे है।

केवल ज्ञान असहाय होता है मति ज्ञान इन्द्रियो को सहायता से जानता है। श्री कानजी भाई ने तत्वार्थ सूत्र की टीका मे ऐसी ही कल्पित बाते लिख डाली है। यदि मति ज्ञान केवल ज्ञान का अ श है तो वह भी असहाय होना चाहिये परन्तु वह तो इन्द्रिय मन की सहायता से होता है। अत. वैसा बताना आगम विरुध्द है।

श्री कानजी भाई का ग्यारहवां आगम विपरीत मत

ज्ञान इन्द्रियों की सहायता से नहीं जानता

वे कहते हैं— "यदि माना जाय कि ज्ञान इन्द्रिय से जानता है तो इसका अर्थ यह होगा कि ज्ञान का विशेष स्वभाव काम नहीं करता और ऐसा होने पर बिना विशेष के सामान्य ज्ञान का ही अभाव हो जायगा। इसलिये यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान इन्द्रिय से नहीं जानता। अल्प ज्ञान जब अपने द्वारा जानता है तब अनुकूल इन्द्रियां मौजूद रहती हैं। किन्तु ज्ञान उनकी सहायता से नहीं जानता। किंतु यदि माना जायगा कि ज्ञान इन्द्रिय से जानता है तो वह ज्ञान मिथ्या ज्ञान होगा क्योंकि इस मान्यता से निमित्त और उपादान एक हो जाता है।"

(आ० ध० पृ० ४३ अङ्क ३ वर्ष १)

दिगम्बर जैन आगम

आचार्य उमास्वामी स्पष्ट कहते हैं कि मति ज्ञान इन्द्रिय की सहायता से ही होता है इसीलिये वह परोक्ष कहा जाता है। परन्तु कानजी भाई कहते हैं कि इन्द्रियो की सहायता से ज्ञान नही होता है। उनका ऐसा कहना आगम से तो सर्वथा विपरीत है ही, साथ-ही प्रत्यक्ष विरुध्द है। जिसके नेत्र फूट जाते हैं वह देख नही सकता है जिसके कान फूट

जाते हे वह सुन नही सकता है। समझ मे नही आता है कि इस प्रकार समस्त आचार्यों के विरुध्द और प्रत्यक्ष अनुभव विरुध्द वे मिथ्या बाते क्यो कहते हैं ? ऐसे मनमानी कल्पित एव उत्सूत्र कथन तो शास्त्रो का स्वाध्याय करने वाला साधारण जानकार भी नही करेगा।

श्री कानजी भाई के मनगढ़न्त स्वतन्त्र मन्तव्यो को कहा तक लिखा जाय। उनकी प्रत्येक बात विपरीत है।

अभी तारीख १५-६-६३ के जैन दर्शन पत्र के २२ वें अङ्क मे तथा जैन गजट के ता० ३-१०-६३ के अङ्क ४६ मे "कानजी भाई की बकालात" इस शीर्षक से एक विस्तृत लेख लाडनू निवासी श्री भवरलाल जी सेठी ने छपाया है उस लेख मे उन्होने "भगवान श्री कुन्द कुन्द कहान जैन ग्रंथ माला पुष्प १३" के कुछ उध्दरण छपाये है उन्हे हम उन्ही शब्दो मे ज्यो के त्यो यहा रख देते हैं, उन्हे पढकर पाठक सब कुछ स्वय समझ लेगे।

"वे कहते है— बकरे को काटकर उसका मास फकीर को खिलाने वाले और अरहंत देव की पूजा करने वालो मे कोई अन्तर नही है।"

"नग्न साधु कुगुरु है और वे लुटेरे है।"

ये बाते श्री कानजी स्वामी के प्रवचन मे कही गई हैं। ध्यान से पढ़िये—देखिये न० १५, १६, १७।

(भगवान श्री कुन्दकुन्द कहान जैन ग्रथ माला पुष्प १३)

मुक्ति का मार्ग

परमपूज्य परमोपकारी, आध्यात्म योगी श्री कानजी स्वामी का सत्तास्वरूप शास्त्र पर प्रवचन—

(१) यदि भक्ति की जाय तो धर्म होता है, अरे ! यह कहा है किसने ? भक्ति से धर्म होता है यह किसने कहा। दूसरो की दया और भक्ति से तीन काल और तीन लोक मे भी धर्म नही होता है। पृष्ठ ८

(२) यदि देवयोग से किसी को कदाचित सच्चे देव गुरदेव का योग भी मिल गया तो वह पुण्य की बाह्य क्रिया मे लग गया। वह यह मान बैठता है कि पूजा करो, दान करो, संयम का पालन करो और महाव्रत अङ्गीकार करो इससे धर्म होगा इस प्रकार वह व्यवहार धर्म मे रत हो जाता है। सच्चे देव-गुरु का संयोग प्राप्त करके भी अनेक जीव उपवासादि करने मे पिल पड़ते है और तप करने मे लग जाते है। वे उसी मे धर्म मान बैठते है। पृष्ठ १६

(३) शरीर की क्रिया अथवा रुपया पैसा वगैरह से धर्म तो क्या किंतु पुण्य भी नही होता। पृष्ठ २०

(४) यदि दान पूजा इत्यादि में राग को घटायें तो पुण्य होगा, किंतु धर्म नही होगा। उसके जन्म मरण का

अन्त नही होगा, भव का नाश नही होगा, वह श्रावक नहीं कहलायेगा। पृष्ठ १५

(५) जो पहिले कहा है वह अशुभोपयोगी मिथ्यादृष्टि है और दूसरा शुभोपयोगी मिथ्यादृष्टि। वह व्रत करता है उपवास करता है, पूजा भक्ति करता है दान करता है। पृष्ठ २५

(६) जो व्यवहार धर्म क्रिया मे शुभ क्रिया मे लीन है वह भगवान का शत्रु है शुभोपयोगी मिथ्या दृष्टि है। उसके परिणाम मे वर्तमान मे शुभ भाव हैं किन्तु शुभ भाव करते२ मिथ्यादृष्टिपना तीन काल मे भी नही टल सकता। प्रत्युतः शुभ करते२ उसे लाभदायक मानने मे मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। पृष्ठ २६

(७) जो तत्व का निर्णय नहीं करता और पूजा स्तोत्र दर्शन, त्याग, पत, वैराग्य, संयम, सतोष इत्यादि सब कार्य किया करता है उसके यह सब कार्य व्यर्थ है। पृष्ठ २४

(८) कुल परम्परा से, पंचायत के आश्रय से अथवा मिथ्या बुद्धि से दर्शन पूजनादि रूप प्रवृत्ति करता है अथवा जो मत पक्ष के, हठ ग्रह के कारण दूसरो (देवी देवताओ) को न भी माने और मात्र उसका (स्वयं माने हुए जिनदेवादिक का) ही सेवक बना रहे उसे निश्चय ही अपने आत्म

कल्याणक रूप कार्य की सिद्धि नहीं होती इसलिए वह अज्ञानी मिथ्यादृष्टि ही है। पृष्ठ २८

(९) पुण्य करते२ धर्म होना अशक्य है। पृष्ठ ३०

(१०) कोई भेष धारण करलेने से गुरू नही हो जाता। पृष्ठ ३६

(११) जिसने बहिरंग से साधु का भेष धारण कर लिया हो और बाह्य क्रियाओं का बराबर पालन करता हो, किन्तु अन्तरंग मे गुणो की अपेक्षा से गुरुत्व की योग्यता न हो तो वह कुगुरु है। पृष्ठ ३८–३९

(१२) लोग मानते है कि खाना पीना छोड़ देना इस-लिए तप हो गया और निर्जरा हो गई। और उपवास करके शरीर को सुखा लिया इसलिये अन्दर धर्म हुआ होगा। इस प्रकार शरीर की दशा से धर्म को नापते है। पृष्ठ ४३

(१३) पहाड़ के ऊपर चढ़ गये और मूर्ति के दर्शन कर लिये इससे कहीं धर्म नही हो जाता। पृ० ४७

(१४) आत्मा शरीर का कुछ नहीं कर सकता और शरीर से आत्मा का कुछ नहीं होता। आत्मा शरीर के आश्रय से धर्म नही कर सकता, क्योकि दोनो की जाति जुदी है। आत्मा अरूपी ज्ञाता स्वरूप वस्तु है वह देहादिक रूपी जड़ वस्तु का कुछ भी नही कर सकता और न पर द्रव्य ही आत्मा का कुछ कर सकते है। पृ० ४७

(१५) हमारे बाप दादा जो मानते आरहे है। वह हम भी मानते है तथा हमारे गुरु जो कहते है हम वही मानते है और हमारी जाति के अग्रगण्य पुण्य पुरुष तथा सघ इन्ही देव को मानते है। इसलिये हम भी मानते है और हम सर्वज्ञ की पूजा इत्यादि धर्म बुद्धि से करते हैं तथा अरहन्त देव को ही देव मानकर उनकी पूजा और जप करते है। पाच-पांच सौ और हजार२ वर्ष से हमारे बाप दादाओ से जो प्रथा चल रही है उसी के अनुसार हम भी चलते है और इसी मार्ग से हमे मोक्ष भी जाना है। इस प्रकार कुछ लोग अपने समुदाय संघ के आश्रय से अथवा मूढ़ मति से यो मान बैठे है और वे देव का यथार्थ स्वरूप नही समझते वे मात्र नामधारी जैन अज्ञानी है। पृष्ठ ६२

(१६) कोई आदमी बकरे को काटकर उसका मास किसी फकीर को खिलाकर उसमे 'सवाद' मानता है और वह बकरे के मरजाने की चिन्ता न करके फकीर को खिलाने मे धर्म ध्यान कर केवल धर्म बुद्धि से वैसा अकृत्य करता है उसी प्रकार तुम अपने देव के स्वरूप को नही जानते और न तुम्हे यही ज्ञान है कि उनमे यथार्थता किस प्रकार है ? फिर तुममे और उसमे क्या अन्तर रहा ? पृ० ६३

(१७) इन दिनो तो भारत मे सच्चे मुनि भी दृष्टि-गोचर नही होते। आत्मा आनन्दकन्द है, अमृत के समान है

सच्चे मुनि ऐसे स्वरूप मे दृष्टि और ध्यान लगाये रहते हैं और सिंह के समान निर्भय वृत्ति से जंगल मे विचरण करते हैं। किन्तु वर्तमान मे यह मार्ग बहुत अंशो में लुप्त हो गया है। जगत के प्राणियो का अधिकाश समय कमाने, खाने, पीने भोगादिक मे चला जाता है और जो कुछ थोड़ा समय बचता है उसे साम्प्रदायक कुगुरु लूट लेते हे। मुनित्व क्या है? निश्चय क्या है? व्यवहार क्या है? इनका ज्ञान उन कुगुरुओ को नहीं है। ऐसे कुगुरुओ के पास जाने से धर्म नष्ट हो जाता है। कहीं हंस न हो किंतु सफेद बगुले हो तो वे हंस थोड़े ही माने जाते हैं। उसी प्रकार नग्न होने मात्र से वह भावलिंगी नहीं माना ता और जिनके आचरण ठीक नहीं उनका तो कहना ही क्या?

पाठक महोदय! श्री कानजी भाई ने "भगवान श्री कुन्द-कुन्द कहान जैन ग्रंथमाला पुष्प १३" के मुक्ति मार्ग पर जो प्रवचन किया है उसके उध्दरणो को विशेष कर १५, १६, १७ के उध्दरणो को पढने से स्वय यह समझ लेंगे कि जिनेन्द्र पूजन और जिनेन्द्र भक्ति तथा दि० जैन साधुओ के प्रति श्री कानजी भाई के कितने भयकर दुर्भाव है?

कुलाचार से अर्हत देव की पूजा भक्ति करने वालों को वकरा काट कर फकीर को मास खिलाने की भक्ति के समान बताकर श्री कानजी भाई ने दि० जैन धर्म की इतिश्री करदी है।

इसी प्रकार उन्होने दिगम्बर जैन मुनियो को कुगु और लुटेरे वताया है उनके पास जाने से धर्म नष्ट हो जाता है ऐसा भी बताया है। जो मुनि गृहस्थो से मिथ्यात्व और पच पापो का त्याग कराते है। मयम पालने का नियम दिलाते है स्वाध्याय और ध्यान तथा तपश्चरण करने मे सदैव तत्प रहते है उन्हे लुटेरे और कुगुरु बताने से श्री कानजी भाई की भगवान की पूजा और मुनियो से कितनी घृणा (नफरत) है यह बात उनके प्रवचनो से स्पष्ट हो जाती है।

इस प्रकार के विचार और प्रचार से वे किस प्रका मोक्ष मार्ग के अनुगामी और दि० जैन ठहरते है ?

इन्ही बातो से उनके द्वारा जिन मन्दिर वनवाने रहस्य भी छिपा नही रहता है। जहा जिन पूजा के विपर उपर्युक्त घृणा के दुर्भाव है वहा कैसी भक्ति और कं श्रध्दा ?

वे मोक्ष मार्ग के विरोधी स्पष्ट ठहरते हैं

श्री कानजी भाई को हमने मोक्षमार्ग विरोधी उपर्यु कारणो से वताया है अन्यथा इतनी वड़ी और इतनी कडी

हम कभी नही लिखते। वे चारित्र धारियो का और महाव्रतादि चारित्र का विरोध खुले रूप मे करते है आत्मा मे कर्मों का सर्वथा अभाव बताकर सप्ततत्व गुण स्थान मार्गणा आदि सिध्दान्त का भी निषेध करते है। तीर्थङ्कर की वाणी से कुछ लाभ नही बताकर वे समस्त जिनवाणी का ही विरोध करते है। निमित्त कारणों का निषेध कर वे केवली श्रुत केवली के पादमूल मे होने वाले क्षायिक सम्यक्त्व और तीर्थकर प्रकृति के लाभ का भी निषेध करते है। जीव दया पालने वालो को मिथ्या दृष्टि कहते है। जीवो को मारने मे कोई पाप वे नही बताते है। मुनिदान तीर्थ वन्दना उपवासादि तपश्चरण शास्त्र स्वाध्याय व्रत पालना आदि मोक्ष साधक क्रियाओ को अधर्म और जड शरीर की क्रिया बताकर समस्त क्रियात्मक (छठे गुण स्थान तक होने वाले) धर्म का सर्वथा लोप करते हैं ऐसी अवस्था मे सम्यग्दर्शन, ज्ञान चरित्र और उनके साधक देवगुरु शास्त्र के श्रध्दान तथा समस्त तत्वो का निषेध कर तथा उनसे विपरीत कल्पित मिथ्या मन्तव्यो का प्रचार करने से उन्हे मोक्ष मार्ग विरोधी और दि० जैनत्व का विरोधी समझने मे किसी भी धार्मिक पुरुष को सन्देह नही हो सकता है।

दुख तो इस बात का अधिक है कि अपने मिथ्या मन्तव्यो के विषय मे त्यागियो एव विद्वानो द्वारा बार२ कहने

पर भी वे चर्चा द्वारा निर्णय भी नही करना चाहते।

यदि वे अपने विचारो को अपने तक ही रखते तो भी ठीक था कारण व्यक्तिगत विचार आचार कोई कैसे भी रखे वह स्वतन्त्र है, परन्तु वे तो अपने मिथ्या विचारो का प्रचार कर समूचे दिगम्बर जैन समाज को मिथ्या मार्ग को और घसीटना चाहते है।

वे नये पंथ के नेता बनकर पुजना चाहते हैं

वर्तमान युग, धर्म का युग नही रहा है किन्तु अर्थ युग एव स्वतन्त्र स्वेच्छाचारी युग बन रहा है। देश काल का वातावरण, वर्तमान धर्म शून्य राजनीति, धर्म निरपेक्ष सरकार आदि सभी बाते जनता को धर्म विमुख बना रही है। गृहस्थो चित कुलाचार छूटता जारहा है। सदाचार और भक्षाभक्ष्य विवेक हटता जारहा है। छुआछूत विचार एव शुध्द खानपान का विचार छोडकर होटलो मे खाने की प्रवृत्ति जोरो से बढ रही है। जघन्य पाक्षिक के अवश्य पालने योग्य अष्ट मूल गुण भी नही पाले जाते है ऐसी दशा मे उन क्रियाओ को जड शरीर की क्रिया बताकर वे उनका विरोध करते है। श्री कानजी भाई की यह नवीन पथ की सृष्टि भोले लोगो और भावी सन्तान को चारित्रहीन बना देगी। इसी बात की गहरी चिन्ता सभी आचार्यों मुनिराजों त्यागियौ और धार्मिक विद्वानो को हो रही है।

तनातनी बढ़ती जारही है

अभी पर्व के वाद जैन गजट और जैन दर्शन मे उन पत्रो के सम्पादको ने चिन्ता के साथ ये समाचार छपाये है कि राघोगढ गुना आदि मे मुमुक्ष मण्डल (कानजी मत के अनुयायी) और दिगम्बर जैनो मे परस्पर गाली गलौज होने के साथ लठ्ठ भी चले है। इसी प्रकार देहली, कलकत्ता, वम्वई, अशोकनगर, भोपाल, उज्जैन आदि सभी नगरो मे जहाँ२ मुमुक्षु मन्डल वन गये है। तनातनी बढती जाती है। जब कानजी भाई के अनुयायियो का बल और समुदाय अधिक बढ जायगा तो एक नवीन सम्प्रदाय ही स्थायी रूप से वन जायगा। दिगम्वर जैन धर्म के भीतर एक स्वतन्त्र स्वच्छन्द आचार विचार रहित नये पथ या सम्प्रदाय बन जायगा। तब सिवा पश्चाताप के और कोई सुधार अशक्य ही हो जायगा।

ऐसी भीषण भावी परिस्थिति की चिंता भी दि० जैन महासभा, शान्ति वीर सिध्दान्त रक्षिणी सभा और दि० जैन परिषद सभी सस्थाओ को होनी चाहिये जो संस्थायें धर्म रक्षा का पूर्ण उद्देश्य प्रकट करती है वे भी चुप है यह कम खेद की बात नही है। कम से कम तत्व चर्चा द्वारा सिध्दान्त मत भेद को दूर कराने की योजना भी महासभा

जैसी व्यापक सस्था नही करे यह बात अत्यन्त खेद जनक है।

भगवान महावीर स्वामी के धर्म शासन मे महाभयकर विकृति, धर्म का मूलोच्छेद, मोक्षमार्ग मे बाधक विपरीतता ये सब बाते श्रावक धर्म एव मुनि धर्म दोनो की पूर्ण घातक है। वे चुपचाप सहन करने की बाते नही है। इसीलिये खेद के साथ इतना लिखने के लिए हम को वाध्य होना पड़ा है। क्योकि उपर्युक्त बातो से दिगम्बर जैन धर्म का अवर्णवाद होता है। और लोप होता है।

हमारी दो अभिलाषायें

श्री कानजी भाई का मन दुखाने एव उनकी अवहेलना होने की दृष्टि से कोई बात इस समूचे ट्रैक्ट मे हमने नही लिखी है। तथा उनके अभिप्राय के विरुध्द असत्य बात भी कोई नही लिखी है। जो भी कुछ लिखा है वह सव उनके उध्दरण (क्युटेशन) देकर ही लिखा है।

हमारी हार्दिक अभिलाषा दो है, पहिली तो यह है कि-इस ट्रैक्ट को पढ़कर कोई भी दि० जैन बन्धु अहितकारक मिथ्या मन्तव्यो के भुलावे मे कभी नही आवे। वे सावधान हो जावे और महान शुभ पुण्य से पाये हुए इस सर्व जीव कल्याणकारी परम पावन दिगम्बर जैन धर्म से विचलित नही होवे। देवशास्त्र गुरु मे दृढ़ श्रध्दा रखकर स्वात्म हित

साधन करते रहे। यथाशक्ति चारित्र का भी पालन करते रहे तभी मोक्ष मार्ग मे प्रवृत्ति होगी। और भव भ्रमण का अनादि प्रवाह छूट सकेगा। भगवत् कुन्दकुन्द आचार्य समन्त भद्र आदि सभी महर्षियो ने इसी सन्मार्ग द्वारा स्व-पर कल्याण किया है।

दूसरी हमारी तीव्र अभिलाषा यह है कि—श्री कानजी भाई दिगम्बर जैन धर्म (दि० जैन आगम) के विपरीत अपने मनगढन्त मिथ्या मन्तव्यो को छोडकर दिगम्बर जैन आगमानुसार देव शास्त्र गुरु के दृढ़ श्रध्दानी एव सम्य ज्ञानी बनकर यथा शक्ति चारित्र का भी पालन करे जब वे सच्चे दि० जैन बन जायेंगे। तभी वे अपना और पर का कल्याण कर सकते है। यदि वे ऐसा करे तो उनके द्वारा बनवाये हुए जिन मन्दिरो से श्रावक तथा मुनियो का हित होगा। और जो भी गुजराती एवं कुछ उत्तर प्रान्त के भाइयो के जहो तहा मुमुक्ष मण्डल बन गये है उनका भी सच्चा कल्याण होगा। यदि उन्होंने ऐसी सुबुध्दि के साथ अपने आगम विपरीत मन्तव्यो का परिवर्तन किया तो हमको एवं समूचे दि० जैन समाज को बहुत आनन्द होगा। तब हम सोनगढ पहुँचकर उनका हार्दिक सम्मान एवं धार्मिक वात्सल्य प्रकट करेंगे। इसी अभिलाषा एव सद्भावना के साथ हम इस ट्रैक्ट को समाप्त करते है।

सर्व मंगल मांगल्य सर्व कल्याण कारकम् ।
प्रधानं सर्व धर्माणां जैनं जयतु शासनम् ।।

मोरेना (म. प्र.)
१०–१०–६३

मक्खनलाल शास्त्री